Chapter- 2

द्वितीय अध्याय

"हिन्दी की दलित कहानियों में नारी संवेदना"

अध्याय–2

हिन्दी की दलित कहानियों में नारी संवेदना

'यत्रनार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' एवं 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीबयसी' अर्थात् 'जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता वास करते हैं, तथा 'हे जन्मदात्री धरती माँ, तू स्वर्ग से भी महान है' ऐसा कहे जाने वाले देश में स्त्रियों को बदहाल जिंदगी जीने को विवश किया जाता है। प्राचीन काल से वर्तमान काल तक भारतीय दलित नारी की सामाजिक यात्रा पर अगर हम गौर करें, तो हम पाएँगे कि दलित नारी को अनेकानेक बंधनों एवं बर्बर अत्याचारों के दौर से गुजरना पड़ा है। आज महिलाओं में जो भी जागृति आई है, वह बाबा साहब डॉ.आंबेडकर की देन है। आज दलित महिलाओं में कुछ शिक्षित हैं, किंतु अधिकतर अशिक्षित हैं। किसी का परिवार उसके साथ उसके संघर्ष में सहयोगी है, जबकि किसी का परिवार उसकी प्रगति, शिक्षा, विचारों, स्वतंत्रता का विरोधी है। सदियों से दलित महिलाओं का जातीय शोषण सवर्णों द्वारा किया जा रहा है, उस शोषण, अन्याय के प्रति आज कुछ दलित महिलाओं ने विद्रोह करना शुरु कर दिया है। इस विद्रोह में, इस पहल में कुछ पिता या पति उसके साथ हैं, तो कुछ नहीं भी हैं। दलित समाज की महिलाएँ अपने परिवार और समाज में नाना प्रकार के शोषण का शिकार हैं, क्योंकि वे नारी है। यह दोहरी मार दलित समाज की महिलाएँ झेल रही है। हिन्दी दलित कहानियों में दलित नारी के विविध रुप, समस्या, स्थिति, परिवेश, संघर्ष, विद्रोह, जातिगत हीनबोध, पीड़ा, विवशता, अस्पृश्यता, आर्थिक संकट, आदि को दलित एवं गैरदलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से प्रकट किया है। दलित महिलाओं की संवेदनाओं उनके अस्तित्व, अस्मिता एवं स्वतंत्रता आदि के प्रश्नों को उपरोक्त मुद्दों के माध्यम से दूसरे अध्याय में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

2.1. दलित शिक्षित महिलाएँ

1. 'बदबू'– सूरजपाल चौहान

दलित स्त्री शिक्षित होते हुए भी उसे दलित होने के कारण कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। दलित समाज में स्त्री शिक्षा को महत्त्व नहीं दिया जाता। वे तो बेटी को पराया धन मानकर जल्द से जल्द अपनी जिम्मेदारी पूरी करने में विश्वास करते हैं। प्रस्तुत कहानी में **संतोष** के साथ भी यही होता है। संतोष अपने कस्बे के दलित परिवार की पहली लड़की थी, जिसने इंटर कॉलेज की परीक्षा सत्तर प्रतिशत में पास की थी। उसके साथ की दूसरी सवर्ण लड़कियाँ उच्च शिक्षा पाने शहर में जाती हैं। संतोष भी आगे पढ़ना चाहती है, किन्तु उसके पिता किशोरी उसे आगे नहीं पढ़ाना चाहते, वे तो उसकी शादी के लिए उतावले हो जाते हैं। संतोष लाख मिन्नतें करती है, किन्तु किशोरी नहीं मानता। दो वर्ष हो जाते हैं लेकिन उनकी बिरादरी में दसवीं पास लड़का भी नहीं मिल पाया। संतोष की माँ अपना सारा गुस्सा उस पर उतारते हुए कहती है–

> **''तुझे इतना पढ़ा–लिखाकर तो हमने आफत मोल ले ली, अब बिरादरी में तेरी बराबर पढ़ा–लिखा लड़का ही नहीं मिलता.....हमारी तो किस्मत ही फूट गई।''**[1]

हरिजन समाज में आज भी शिक्षा का अभाव है। लड़के हों या लड़कियाँ ऐसे परिवार बहुत कम होंगे जो अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाते हैं। संतोष जैसी होशियार पुत्री पाकर किसी भी माता–पिता को खुशी होती, किन्तु दलित माता–पिता होने के कारण उन्हें खुशी तो दूर बल्कि अधिक चिंता होने लगती है, कि इसके योग्य वर कहाँ से ढुँढा जाए। संतोष के योग्य लड़का तो नहीं मिलता, लेकिन 9वीं फेल रजिन्दर से उसका विवाह तय हो जाता है। रजिन्दर दिल्ली में एम.सी.डी. में सफाई कर्मचारी का काम करता था। संतोष के पिता हरिजन थे, किंतु उन्होंने कभी सफाई काम नहीं किया था, न ही संतोष के परिवार ने ही ऐसा काम किया था। जब उसे इस बात का पता चलता है कि उसकी शादी एक सफाई कर्मचारी से हो रही है, तो उसने विवाह करने से इन्कार कर दिया, इस पर परिवार वाले कहने लगे–

> **"बेटी धन को अधिक पढ़ाना–लिखाना अच्छा नहीं है, इस लड़की को देखो सभी के सामने कतर–कतर जुबान चलाती है....इसने तो सारी लाज–शर्म ही उतारकर रख दी।"**[2]

शिक्षा पाने से व्यक्ति जागरुक बनता है। उसे अपने अधिकार का ज्ञान होता है, साथ ही अपने कर्त्तव्य को भली–भाँति करने में वह सक्षम बनता है। लेकिन जहाँ सारे अशिक्षित लोग हों वहाँ संतोष के मनोभावों को भला कौन समझता ? आखिर संतोष का विवाह हो जाता है। वह दिल्ली अपनी ससुराल पहुँच जाती है।

संतोष का ससुराल एक झोपड–पट्टी में था, जहाँ चारों ओर गंदगी–ही–गंदगी थी। उसकी सास मोहल्ले में मल–मूत्र ढोने का काम करती थी और ननद झाड़ू–पोंछा करती थी। घर के सामने ही उन्होंने कुछ सुअर पाल रखे थे। गाँव के शुद्ध वातावरण में रहने वाली संतोष का इस दुर्गधमय वातावरण में साँस लेना भी मुश्किल था। बदबू के कारण उसका दम घुटता था।

शादी के दस–पन्द्रह दिन भी नहीं हुए थे कि, उसकी सास और पति उसे सफाई काम करने के लिए कहते हैं। संतोष यह काम कतई करना नहीं चाहती थी। सास के साथ जब वह जाती है, तो उसे इस गंदे काम को देखकर ही उबकाई आने लगती है। इस पर सास उसे डपटते हुए कहती है–

> **"देख बहू–काम से नफरत ना करें, यह तो म्हारा खानदानी काम है..यदि यह काम हम नहीं करेगें तो भला कैसे गुजारा होगा म्हारा (हमारा)।"**[3]

संतोष ने यह काम पहले कभी देखा भी नहीं था, उसकी सास गंदगी भरे मल–मूत्र की सफाई के इस काम को बड़े रुआब से अपना खानदानी काम बताती है। उसने इस काम को अपने जीवन में सहर्ष स्वीकार कर लिया था, इसलिए वह संतोष पर दबाब डालती है, कि वह भी इसे करके अपना गुजारा करे। संतोष सोचती है कि चाहे उसकी जान चली जाए लेकिन वह ऐसा काम हरगिज नहीं करेगी। वह पढ़ी–लिखी है, उसके माता–पिता ने भी ऐसा काम नहीं किया है। पति के समक्ष जब वह तर्क–वितर्क करती है, तो वह कहता है–

> **"पढ़ी–लिखी है तो क्या हुआ, ऐसी कौण–सी अनोखी बात है.....मैभी तो नवीं फेल हूँ बीस हजार रिश्वत के दिए थे काम पाने के बदले तब कहीं**

जाकर लगी म्यूनिस्पल्टी में झाड़ू की नौकरी, अरे हम भंगी है भंगी.... म्हारा पेशा ही है झाड़ू लगाना।"[4]

संतोष की पढ़ाई से न तो उसके मायके वाले खुश थे और न ही उसके ससुराल वाले ही। बल्कि ये तो उनकी समस्या बन जाती है। सफाई कर्मचारी की नौकरी में भी रिश्वत देकर रजिंदर को काम मिलता है। हमारे देश में बेरोजगारी इतनी है कि ऐसे काम के लिए भी लोग रिश्वत देने को तैयार हैं। संतोष सोच में पड़ जाती है कि–

"दूसरे समाज के पढ़े–लिखे तो दूर अनपढ़ होकर भी यह काम नहीं करते..... वे दूसरा अन्य काम करके अपना जीवन यापन कर लेते हैं। लेकिन यह गंदगी से भरा काम कतई नहीं करते, आखिर, हमारी जाति बिरादरी के लोग ही यह काम क्यों करते हैं ?"[5]

संतोष का यह प्रश्न वर्ण व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाता है। आखिर शुद्र ही ऐसा काम क्यों करते हैं ? क्या वे मनुष्य नहीं हैं ? सवर्ण और उनमें ऐसा क्या अंतर है, जिससे वे इस गंदगी भरे कार्य को करने के लिए आज भी मजबूर हैं। मनुष्य होकर मनुष्य का मैला ढ़ोना कहाँ तक उचित है। इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करके भी आज दलित समाज कितना पिछड़ा हुआ है। संतोष जैसी पढ़ी–लिखी युवती को मजबूरन मैला उठाने का कार्य करना पड़ता है। इस कार्य को करने के बाद उसे जो रोटी–सब्जी मिलती है। उसे खाकर अपना पेट भरना पड़ता है।

जब से संतोष ने सफाई काम शुरु किया था, तब से वह गुमसुम बनकर रहने लगती है। उसे अपने ही शरीर से बदबू आती हुई महसूस होती है। हर वस्तु में उसे मलमूत्र नजर आने लगता हैं, यहाँ तक कि पति का स्पर्श भी उसे आनंद की अनुभूति नहीं, बल्कि बदबू का अहसास कराता है। अनचाहे इस काम से संतोष की हालत दिन–प्रतिदिन खराब होने लगती है। वह अपने को इस दिनचर्या में सहज नहीं कर पाती। उसके जीवन में आनंद और खुशियों के स्थान पर उदासीनता और बदबू फैल जाती है।

2. 'सूरज'– जयप्रकाश कर्दम

जयप्रकाश कर्दम द्वारा रचित प्रस्तुत कहानी की नायिका **सुमन** एक शिक्षित दलित युवती है। वह साइन्स की छात्रा है। एक बार गाँव के सीधे–सादे दलित युवक सूरज की रेगिंग उसके सीनियर करते हैं। वे सूरज का कहते हैं कि वह सुमन से जाकर 'आई लव यू' कहे। सहमा, डरा सा सूरज उनकी बात मानने के लिए विवश हो जाता है और सुमन से यह बात कह देता है। सुमन को पहले तो बड़ा गुस्सा आता है, किंतु बाद में वह सूरज के भोलेपन को देखकर समझ जाती है, कि उसकी रेगिंग की जा रही है। सुमन को विचार आया कि–

"दलित छात्र–छात्राओं के साथ गैर–दलितों का व्यवहार वैसे ही काफी द्वेषपूर्ण होता है। पिछले वर्ष की ही बात है जब एक दलित छात्र को रेगिंग के बहाने इतना उत्पीड़ित किया गया था कि उसने आत्महत्या कर ली थी।"[6]

सुमन कॉलेज में दलित छात्र–छात्राओं पर हो रहे अत्याचार को देख चुकी है। दलित होने के कारण उन्हें सवर्ण छात्रों द्वारा प्रताड़ित किया जाता है अपशब्द कहे जाते हैं। सुमन नहीं चाहती थी कि सूरज को दूसरे छात्र परेशान कर रहे हैं, तो वह भी उसके साथ कठोरता से व्यवहार करे। उसे डर था कि सूरज कहीं अपनी पढाई ही न छोड दे। कई दलित छात्र ऐसी रेगिंग के बाद अपनी पढ़ाई छोड़ देते हैं, और अपना केरियर चौपट कर देते हैं। सुमन सूरज को 'आई लव यू टू' कहकर इस बात को आगे नहीं बढ़ाती। सूरज ने कल्पना नहीं की थी, कि सुमन उसे कोई सजा नहीं देगी।

इस घटना के बाद सुमन ने सूरज को समझाया, कि यदि इस कॉलेज में पढ़ना है, तो निडर बनकर आत्मविश्वास के साथ ऑख से आँख से मिलाकर बात करना सीखो। यूँ डरकर तुम कुछ नहीं कर पाओगे। सुमन की सलाह का परिणाम जल्द ही उसे मिला। कुछ दिनों में सूरज अपनी कॉलेज में सबका चहिता बन गया। खासकर दलित छात्रों का वह नेता बन गया। किसी छात्र की समस्या का समाधान सूरज के लिए छोटी–सी बात बन गई। सूरज के होंसले और उत्साह के कारण कॉलेज में दलित छात्रों ने मिलकर पहली बार आम्बेडकर जयंती जोर–शोर से मनायी।

सुमन सूरज में आए बदलाव से बहुत प्रसन्न थी। एक दलित छात्र इतने कम समय में इतना प्रसिद्ध हो गया, कि सवर्ण छात्रों को उससे ईर्ष्या होने लगी। सुमन को डर था, कि कहीं वे लोग सूरज को कोई हानि न पहुँचाएँ। सूरज अब निडर बन गया था। इसीलिए जब एक सवर्ण छात्र ने उस पर 'चमार' कहकर कोई टिप्पणी कर दी, तो सूरज ने झेंपने की बजाए उस लड़के को कड़ककर जवाब दिया–

> **"मैं चमार हूँ। जानता है, चमार क्या करते हैं ? रॉपी से पेट चीरकर कतरनी से आंत बाहर खींच लूंगा साले की।"**[7]

सूरज अपनी जाति को अपनी कमजोरी नहीं, अपनी ताकत बनाकर उसका उपयोग करता है। वह कुछ दिनों में ही समझ गया था, कि सच्चे इंसान को अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए कभी पीछे नहीं हटना चाहिए।

सुमन अब सूरज के अधिक नजदीक आ गई थी। सूरज के संकोच और दब्बूपन को दूर होता देख उसे बहुत अच्छा लगता था। वह सोचती है–

> **"हमारे समाज के युवओं को इसी तरह से बोल्ड बनकर रहना चाहिए।"**[8]

वह सूरज में अब परिपक्व और समझदार व्यक्ति के गुण देखकर सोचती है, कि यदि हमारे समाज के युवाओं में इतनी बोल्डनेस आ जाए, तो हमारी स्थिति सुधर सकती है। कोई उन्हें प्रताड़ित नहीं कर सकता।

सुमन, सूरज के लिए चिंतित हो रही थी क्योंकि सवर्ण छात्र उसे रास्ते का काँटा समझने लगे थे। वह सूरज से सावधान रहने को कहती है। इस पर सूरज कहता है –

> **"सुमन, हमारी जिन्दगी एक जंग है हम जी नहीं रहे हैं, एक जंग लड़ रहे हैं। कोई भी जंग जमीन से पहले दिमाग में लड़ी जाती है। यदि हम मानसिक रुप से हार जाते हैं, हमारा मनोबल गिर जाता है तो हम मैदान में कोई जंग नही जीत सकते इसलिए हमारा मानसिक या आंतरिक रुप से दृढ़ रहना जरुरी है। यदि तुम डरोगे, सहमोगे या चुप**

रहोगे तो लोग तुम पर हावी हो जांएगे, तुम्हारा जीना–दूभर कर देंगे। निर्भय होकर ईंट का जबाब पत्थर से दोगे तो किसी की हिम्मत नहीं पड़ेगी तुम्हें कुछ कहने की। और फिर मरना तो एक दिन है ही, फिर डर कर क्यों रहे हम। बहादुरी से क्यों न रहें ?"[9]

सूरज ने तय कर लिया था, कि वह चाहे जितने दिन जिए स्वाभिमान की जिंदगी जीएगा। किसी के सामने झुकेगा या गिड़गिडाएगा नहीं।

सुमन की शंका सही निकलती है, एक दिन सूरज की लाश कॉलेज के स्विमिंग पुल में से मिलती है। कुछ लोग इसे आत्महत्या और एक्सिडेंट कह रहे थे। सुमन इसे हत्या कहती है, क्योंकि सूरज को तैरना अच्छी तरह आता था। पुलिस आश्वासन देती है, कि यदि यह हत्या है तो दोषी को सजा जरुर मिलेगी। दलित छात्रों ने अपने युवा नेता को खो दिया था। सुमन, सूरज को इंसाफ दिलाने के लिए आगे आती है, तो सभी दलित छात्र उसका साथ देते हैं।

3. 'एक दलित लडकी'– डॉ. रामसिंह यादव

लक्ष्मी एक शिक्षित दलित युवती थी। अभावों और तंगाइयों को झेलकर छात्रवृत्ति एवं स्कालरशिप की बदौलत वह एम.फिल में एडमिशन पाती है। उसके जीवन का एक सपना था, कि पढ़–लिखकर अपने पैंरो पर खड़ी हो जाए। अपने सपने को साकार करने के लिए वह पूरे मन और लगन से अध्ययन में जुटी रहती। वह जिस होस्टल में रहती थी, उसमें सम्पन्न घर की लड़कियों की संख्या ज्यादा थी। लक्ष्मी के वस्त्र भले ही साधारण थे किंतु उसका रुप नैसर्गिक था। वह शहरी लड़कियों से भी अधिक आकर्षक थी। उसके सुन्दर, सहज और स्वभाव से सभी लड़कियों की वह चहिती भी बन गयी थी।

लक्ष्मी के विभागाध्यक्ष प्रोफेसर डॉ. रोमेश शर्मा भी लक्ष्मी के व्यक्तित्व से प्रभावित थे। लक्ष्मी की सादगी, सरलता एवं परिश्रमी स्वभाव से उनका झुकाव लक्ष्मी की ओर बढ़ने लगा। डॉ. रोमेश का प्रभाव एवं दबदबा विश्वविद्यालय के प्रशासन पर भी था। जो छात्र उनकी खुशामद करते थे, उन्हें वे प्रथम मैरिट दिलवा देते थे। लक्ष्मी भी डॉ. रोमेश के व्यक्तित्व से प्रभावित होती है। वह देख चुकी थी कि प्रेम में छोटा–बड़ा नहीं देखा जाता, जाति–पाति के भेदभाव, ऊँच–नीच की भावना प्रेम मिटा देता है। स्वयं डॉ. रोमेश ने उससे कहा था–

"लक्ष्मी तुम भाग्यशाली हो खुशकिस्मत कि मैं तुमसे प्यार करता हूँ और उस मीरा जोशी की तरह मैं भी तुमसे विवाह समय आने पर करुँगा।"[10]

दलित मीरा ने जोशी के साथ विवाह किया था। लक्ष्मी को रोमेश यही उदाहरण देकर फुसलाता है, कि मैं भी तुमसे विवाह करुँगा। रोमेश विवाह का लालच देकर लक्ष्मी से अनैतिक संबंध बनाता है, किंतु जब यह खबर फैलने लगती है, तो वह लक्ष्मी को अपने रास्ते से हटा देना चाहता है। रोमेश लक्ष्मी के विश्वास की धज्जियां उड़ाकर साफ–साफ शब्दों में कह देता है कि–

"लक्ष्मी तुम आज के बाद मुझसे कभी नहीं मिलोगी। मेरा कोई सरोकार नहीं। तुमने यह कैसे समझ लिया कि मैं तुमको चाहता हूँ, पसंद करता

हूँ, तुम एक दलित हो नीची जाति की लड़की, क्या मै एक दलित से विवाह कर लूं। बेहतर है तुम्हारे लिए कि तुम अपनी औकात में ही रहो।"[11]

डॉ. रोमेश के एक–एक शब्द लक्ष्मी की उम्मीदों पर पानी फेर देते हैं। रोमेश ने लक्ष्मी से छल किया था। उसे विवाह के सपने दिखाकर उसका शारीरिक शोषण किया, और बाद में उसे दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दिया। लक्ष्मी को दलित कहकर उसके प्रेम को ठुकरा दिया। रोमेश ने उससे यह भी कहा था कि–

"एक बात और लक्ष्मी तुम यह समझ लो कि पढ़ने लिखने, उच्च शिक्षा अर्जित कर लेने व डिग्रियाँ प्राप्त करने से या कोई बड़े पद औहदे पर यदि कोई तुम्हारी जाति का दलित बैठ भी जाए तो वह महान और बड़ा नहीं बन जाता। उसके संस्कार, परिवेश कभी नहीं बदलते, नीच तो सदा नीच ही रहेगा और उच्च कुल सदैव उच्च रहेगा।"[12]

डॉ. रोमेश एक शिक्षित व्यक्ति थे, किंतु दलितों के प्रति उनके हृदय में हीन भाव छिपा रहता है। वे लक्ष्मी को इस्तेमाल करने की एक वस्तु से अधिक कुछ नहीं समझते थे।

लक्ष्मी ने जीवन में सबसे बड़ा धोखा खाया था, वह भी अपने शिक्षक से। उससे यह दुख न सहा जा रहा था, न किसी से कुछ कहा जा रहा था। उसे चिंता थी कि स्त्री रोग विशेषज्ञ को वह अपनी बीमारी बतलाएगी तो अपने अविवाहित होने की बात कैसे छुपाएगी। वह एक बार तो आत्महत्या करने के लिए भी सोचती है। आखिर उसे उस होस्पिटल में डॉ. धवन मिल जाता है, जो लक्ष्मी के बचपन का मित्र था। धवन लक्ष्मी को वर्षों से चाहता था। लक्ष्मी का वह इलाज करवाता है। सारी सच्चाई जानने के बाद भी वह लक्ष्मी को अपना जीवन साथी बनाने के लिए तैयार हो जाता है। लक्ष्मी, धवन के प्रस्ताव को स्वीकार लेती है।

डॉ. रोमेश शर्मा को कुलपति बर्खास्त कर देते हैं। 'एक दलित लड़की' की अवमानना करने के अपराध में उसे जेल की हवा खानी पड़ती है। इस प्रकार लक्ष्मी एक शिक्षित युवती होते हुए भी सवर्ण पुरुष के शोषण का शिकार बनती है।

4. 'नई धार'– अनिता भारती

अनिता भारती की प्रस्तुत कहानी **'नई धार'** वर्तमान समय की दलित शिक्षित रमा के आत्मविश्वास को प्रस्तुत करती है। **रमा** दलित भेदभाव विरोधी समिति की सदस्य है। दलित महिलाओं पर महाराष्ट्र में हुए अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाकर उनकी समिति उन पीड़ितों को इंसाफ दिलाना चाहती है। इसके लिए अपनी समिति के अन्य सदस्यों की इच्छा के विरुद्ध जाकर रमा अभिव्यक्ति नामक महिला को मुख्यवक्ता के रुप में बुलाना चाहती है। रमा जानती है, कि अभिव्यक्तिजी स्वयं एक गरीब परिवार में पली–बढ़ी हैं, इसलिए गरीब दलितों की समस्याओं से भलिभाँति परिचित हैं। सवर्ण अभिव्यक्तिजी को अपने कार्यक्रम में बुलाकर महाराष्ट्र के शैरलॉजी गाँव में दलित भोतमाँगेकर पत्नी सुरेखा और बेटी प्रियंका के बलात्कार एवं हत्या पर दलित और गैरदलित बुद्धिजीवियों और लेखकों के समर्थन में विरोध प्रकट करने का निर्णय लिया गया था। अभिव्यक्तिजी एक अच्छी सामाजिक कार्यकर्ता के साथ–साथ

लेखिका भी थी। दलित–आदिवासियों के मुद्दों पर उन्होने कई बार अपना समर्थन दलितों के पक्ष में दिया था। रमा की दृष्टि में दलित महिलाओं की हत्या और बलात्कार के विरोध में किए जा रहे इस कार्यक्रम में आभिव्यक्तिजी सबसे उचित वक्ता होंगी।

कई बार जो व्यक्ति हमें जैसा दिखता है, वह वैसा होता नहीं है। रमा का अभिव्यक्तिजी के विषय में जो विचार था, वह भ्रम साबित हो जाता है। जब वह स्वयं उनके पति एवं मित्र के माध्यम से उन तक यह संदेश पहुँचाती है, कि दलित भेदभाव विरोधी समिति में उन्हें एक कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रुप में बुलाया जा रहा है। अभिव्यक्तिजी इस कार्यक्रम में उपस्थिति देना पसंद करती हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि दलित समिति के कार्यक्रम में गरीब, पीड़ितों, शोषितों के अतिरिक्त कोई नहीं जाता, मीडिया, पत्रकार भी ऐसे कार्यक्रम को हाईलाइट नहीं करते। जबकि प्रगतिशील डेमो क्रेटिक राइट थिंकिग फोरम के कार्यक्रम में प्रोफेसर से लेकर इतिहासकार, बड़े वकील और मीडियाकर्मी मौजूद रहते हैं। अभिव्यक्तिजी अपनी इमेज में इजाफा हो ऐसी जगह पर जाना उचित समझती हैं। रोते–तड़पते लोगों की भीड़ के बीच उन्हें क्या फायदा होता।

कहानी में शांति देवी नामक दलित महिला अकेले ही गाँव के गुंडा तत्त्वों के खिलाफ लड़ते हुए अपना जमीन खोती है, इज्जत खोती है और पति को भी खो देती है। वह हिम्मती, बहादुर और लोकप्रिय बन जाती है, किंतु राजनैतिक पार्टी में प्रवेश करने की चाह में वह अवसरवादी बन जाती है। गाँव की गरीब दलित औरतों के बजाय पार्टी के बड़े–बड़े नेताओं के साथ दिखने में वह अपना बड़प्पन समझती है। रमा इस विषय में सोचती है कि–

> **"बाबासाहब का नाम लेकर गरीब, भोली, मासूम और भावुक दलित जनता को इन राजनैतिक पिछलग्गुओं ने खूब छला है। ऐसे लोग दलित आंदोलन में छल–कपट और अवसरवाद की विकृत परिपाटी डाल रहे हैं।"**[13]

शांतिदेवी जैसी दलित महिलाएँ अपने निजी स्वार्थ के लिए अपने कर्तव्य को भूल जाती हैं। दलित आंदोलन को ऐसे स्वार्थी दलित कमजोर बनाते हैं। प्रस्तुत कहानी में सवर्ण अभिव्यक्ति और दलित शंति देवी दोनों ही स्त्री ऐसी हैं जिसे समाज में मान–सम्मान एवं ऊँच स्थान मिलता है, किंतु दोनों में से कोई भी रमा की दलित समिति के कार्यक्रम की मुख्य वक्ता नहीं बन पाती। इसका कारण यह है, कि जिस अभिव्यक्तिजी को रमा बुलाना चाहती है, वे दलितों की समिति से दूर रहकर उच्च वर्ग से संबंधित कार्यक्रम में उपस्थित रहने में गौरव का अनुभव करती हैं। जबकि शांति रमा की दृष्टि में आदर्श दलित महिला है ही नहीं रमा अभिव्यक्तिजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के प्रभाव से बाहर आ जाती है और यह जान जाती है कि यदि दलितों क़ा उद्धार करना है, तो उसके लिए किसी सवर्ण या अन्य के स्थान पर दलितों को स्वयं एकजूट होकर लड़ना होगा। रमा स्वयं पढ़ी–लिखी है। उसके हृदय में दलित मुद्दों के प्रति समर्पण और प्रतिवद्धता की गहराई है। उसके विचारों को प्रस्तुत करने के लिए बडे मंच या मीडिया की आवश्यकता नहीं है। इसलिए सागर जो कि रमा का मित्र था उसकी सलाहानुसार रमा स्वयं इस कार्यक्रम की वक्ता बनने को तैयार हो जाती है। रमा को एक कड़वा अनुभव होता है किंतु इससे वह कमजोर नहीं पड़ती बल्कि आत्मविश्वास और दृढ़ता बढ़ जाती है। वह कहती है–

"यह कार्यक्रम ज़रुर होगा, महिला वक्ता भी ज़रुर होगी हमें किसी के रहमोकरम की ज़रुरत नहीं, हम अपनी लड़ाई खुद लड़ सकते हैं।"[14]

एक शिक्षित व्यक्ति में इतना साहस होना चाहिए, कि वह अपने अधिकारों के लिए स्वयं लड़ सके। दलित रमा नए ज़माने की शिक्षित युवती है। वह जानती है–

"जब कोई दलित ग्रुप दलित मुद्दों पर अपनी बात रखता है तो ये तथाकथित प्रगतिशील लोग उसे जातिवादी घोषित कर देते हैं और यही प्रगतिशील लोग दलित और उनके मंचों की उपेक्षा कर अन्य मंचों से दलितों के बारे में बोलते हैं तो प्रगतिशील डेमोक्रेटिक और मानव अधिकारवादी कहलाते हैं।"[15]

वास्तव में दलितों द्वारा किए जाने वाले कार्यक्रम का समर्थन सवर्ण नहीं करते और न ही अपने कार्यक्रम में उन्हें उनके मुद्दों को कहने का मौका देते हैं, ऐसी स्थिति में दलितों की समस्या का समाधान कैसे संभव है ? जाति की संकीर्ण दीवारों को तोड़े बगैर समानता की बात नहीं की जा सकती।

कहानी कला के तत्त्वों के आधार पर देखें तो प्रस्तुत कहानी की कथावस्तु वर्तमान समय की दलित रमा की समस्या और उसके संघर्ष को चित्रित करती है। वातावरण एवं देशकाल की दृष्टि से यह वर्तमान समय को चित्रित करती है। भाषा सरल एवं सुबोध है। उद्देश्य स्पष्ट है कि दलित शिक्षितों को स्वयं अपना आत्मविश्वास के साथ अपना मार्ग बनाना होगा। अपने अधिकारों एवं समस्याओं के लिए किसी के सहारे पर आश्रित न होकर स्वयं लड़ना होगा। 'नई धार' शीर्षक बिलकुल उचित है, दलितों द्वारा बनाया जाने बाला नया मार्ग, जिसपर चलकर, आगे बढ़कर वे अपनी मंजिल को पा सकते हैं।

5. 'क्रान्ति'– राज वाल्मीकि

शिक्षा अज्ञान रुपी अंधकार को दूर करती है। दलितों में शिक्षा का अभाव पाया जाता है, जिसकी वजह से अंधविश्वास, अन्याय, अत्याचार, शोषण के समक्ष प्रतिकार करने की शक्ति उन्हें नहीं मिलती। **'क्रान्ति'** कहानी की नायिका **क्रान्ति** उन्नीस वर्षीय दलित शिक्षित युवती है। बचपन से ही अपने माता–पिता के झगड़े होते देखती है, पिता के अन्य स्त्री के साथ संबंध थे और वे उसे लेकर दूसरे शहर में घर बसा लेते हैं। क्रान्ति की माँ बड़ी तकलीफों को सहते हुए भी उसे बेटे की तरह आज़ादी और शिक्षा देती है, ताकि भविष्य में उसे किसी पर निर्भर न रहना पड़े।

समाजसेवा, पेंटिग, लेखन क्रान्ति के शौक थे। अपने ननिहाल की औरतों को वह सरकार के सफाई कर्मचारी के बारे में 1993 का एक्ट समझाती है, जैसे मैला ढ़ोने की प्रथा गैर कानूनी है और इस पर प्रतिबंध है। मैला ढ़ोने वाली औरतों को सरकार की स्कीम के अंतर्गत पुनर्वास करवाकर मैला ढोना छुडवाया ताकि वे भी अन्य सम्माननीय कार्य कर सकें।

क्रांति का जैसा नाम था, वैसे ही गुण उसमें थे। अपना परिचय देते हुए वह निशांत से कहती है कि–

"अन्याय एवं शोषण के खिलाफ मेरे मन में एक आक्रोशं एक आग भरी हुई है। जब भी मैं अन्याय–शोषण देखती हूँ तो मेरा खून खौलने लगता है। मुझसे रहा नहीं जाता और मैं बीच में कूद पड़ती हूँ। हालाँकि मुझे परेशानियों का सामना करना पड़ता है। पर मैं हिम्मत हारने वाली नहीं। अभी तो मेरे संघर्ष की शुरुआत है। अभी मुझे बहुत पढ़ना है। अपने समाज के लिए बहुत कुछ करना है। अपनी जैसी बहनों को जागरुक करना है। अनपढ़ माँ–बहनों का अंधविश्वास दूर करना है। उनके फिजूल के खर्चे कम कराने हैं। उन्हें शिक्षा का महत्त्व समझाना है। मेरी बस्ती में महिलाएँ पहले लड़का–लड़की में भेदभाव करती थीं। मैंनें उन्हें समझाया कि यह गलत है। लड़का–लड़की बराबर हैं। व्यवहार में बेटियाँ बेटों से ज्यादा वफादार होती हैं। मेरे समझाने पर उन पर सकारात्मक असर पड़ रहा है। अपने वंचित समाज को स्वाभिमान के साथ जीना सीखाना है। यही मेरे जीवन का लक्ष्य है।"[16]

क्रान्ति एक आदर्श दलित शिक्षित युवती है। उसके जीवन का लक्ष्य गरीब, अनपढ़, शोषित दलितों को स्वाभिमान के साथ जीना सीखना है। यदि हर दलित युवती में क्रान्ति जैसे समाज सुधार के विचार हों तो वह दिन दूर नहीं होगा, जब ऊँच–नीच का भेद रह पाएगा। अपनी समस्याओं को दूर करने के लिए हर व्यक्ति को स्वयं ही प्रत्यन करना पड़ता है। बाबा साहब का मूल मंत्र "शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो।" को क्रान्ति ने अपने जीवन में उतार लिया था। वह लोगों के मन का अज्ञान–अंधेरा दूर करती है और उन्हें स्वतंत्रता, समता, लैंगिक समानता, बंधुता, आत्मसम्मान का पाठ पढ़ाती है। दलितों के वंचित समाज में क्रान्ति एक नई क्रान्ति की लहर जगाने का प्रयास कर रही है, उसका यह मार्ग कठिन है, लेकिन उसमें जोश की कमी नहीं है।

शिक्षा और संघर्ष से मनुष्य और अधिक शक्तिशाली बनता है। क्रान्ति के पास यह दोनों अनुभव छोटी से उम्र में थे। वह जीवन अपने लिए नहीं अपने लोगों के लिए जीती है। दलित युवती का इतना शक्तिशाली रुप बहुत कम देखने को मिलता है। क्रान्ति जिस, दलित बस्ती में रहती है, उसमें वह कीचड़ में कमल के समान है। वह चाहती तो स्वयं की शोभा बनाए रखने के लिए कीचड़ से दूर हट सकती थी, जैसे कि अधिकतर लोग करते हैं, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया, बल्कि वह अपनों के जीवन से यह कीचड रुपी गंदगी साफ करने के लिए स्वयं कीचड़ में कूद पड़ी है।

प्रस्तुत कहानी में संवाद की दृष्टि से देखें तो संवाद छोटे नहीं कहे जा सकते किंतु पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालने जैसा गुण उसमें है। भाषा शैली वातावरण और देशकाल एवं पात्रों के अनुरुप है। कहानी का शीर्षक 'क्रान्ति' वास्तव में क्रान्ति का जैसा नाम वैसा काम है। कहानी का उद्देश्य स्पष्ट है कि दलित शिक्षित क्रान्ति के माध्यम से दलितों में सजगता लाना। यह जागरुकता हर क्षेत्र में लाने की आवश्यकता हैं।

6. 'इस समय में'– राज वाल्मीकि

राज वाल्मीकि द्वारा रचित **'इस समय में'** शीर्षक कहानी में कहानीकार ने इक्कीसवीं सदी के छात्रों में आए बदलाव को प्रस्तुत किया है। कथानायक शहर में रहने

वाला मध्यमवर्गीय समाज में रहता है। वह जाति का दलित है, किन्तु अपनी जाति इसलिए लोगों से छिपाना चाहता है, क्योंकि उनकी जाति जानकर लोग उन्हें हीन दृष्टि से देखेंगे। बीस वर्ष का पुत्र हर्ष और सोलह वर्षीया बेटी मिली दोनों ही आशावादी और बिन्दास प्रवृति के हैं। दोनों में मासूमियत एवं मैच्योरिटी दोनों का संगम देखा जा सकता है।

हर्ष और मिली जब प्राइमरी स्कूल में पढ़ते थे, तब स्कूल के शिक्षकों एव विद्यार्थियों द्वारा दलित विद्यार्थियों का उपहास किया जाता था। सात वर्ष का हर्ष अपने पिता से पूछता है–

> **"पापा, वाल्मीकि सफाई कर्मचारी होते हैं न ?" प्रश्न सुनकर मैं हतप्रभ रह गया। मैंनें पूछा –"तुम से कौन कह रहा था ?"**
> **"आज हमारी मैडम कह रही थीं कि वाल्मीकि सफाई कर्मचारी हा हैं। हर्ष भी वाल्मीकि जाति का है। इस पर सब बच्चे हँस पड़े थे। मुझे बहुत फील हुआ। पापा आप तो झाड़ू नहीं लगाते फिर हम वाल्मीकि क्यों हैं ?"**[17]

कथानायक को विश्वास नहीं होता है, कि गॉव की तरह शहर की स्कूलों में भी दलित छात्रों के प्रति शिक्षक स्वयं भेदभाव का व्यवहार रख सकते हैं। मिली छः वर्ष की थी, तभी उसके साथ ऐसी ही घटना घटती है। वह कथानायक के पास आकर पूछती है–

> **"पापा, एक गन्दी–सी लड़की को मैंनें भंगन–सी कह दिया था, तो गुप्ता मैडम ने डांटते हुए कहा था। ऋचा शर्मा भंगन नहीं पंडित है। दूसरों को भंगन कहती हो जबकि तुम खुद भंगन हो। मैं इतनी साफ–सुथरी रहती हूँ, फिर भी मैडम ने मुझे भंगन कहा..... ।"**[18]

जाति–दंश दलितों का पीछा कहीं नहीं छोड़ता। स्कूल–कॉलेज, सोसायटी, गाँव, शहर आदि जगह पर दलितों को उनकी जाति का नाम लेकर अपमानित किया जाता है। सवर्ण अपनी सरनेम (टाइटल) बताने में गर्व महसूस करते हैं, जबकि दलित उन्हें जहाँ तक हो सके छिपाने में भलाई समझते हैं। आखिर ऐसा करने के लिए वे क्यों मजबूर हैं ?

मिली एक शिक्षित युवती है। इक्कीसवीं सदी के इस दौर में वह शिक्षा को दलितों की स्थिति में सुधार लाने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है। जाति–विमर्श पर वह पिता से कहती है–

> **"पापा, आज हम सब एक साथ मिलकर शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। पढ़–लिखकर जागरुक बनेंगे, अच्छा कैरियर बनाएंगे : इन्टरकास्ट मैरिज करेंगे तो धीरे–धीरे जाति डिमोलिश हो जाएगा। पति कहेगा, मैं बच्चों के साथ अपना टाइटल लगाऊंगा और पत्नी कहेगी कि मैं अपना टाइटल लगाऊंगी। अंत में निर्णय लिया जाएगा कि किसी का टाइटल न लगाया जाए। इस तरह जाति का विनाश हो जाएगा। लेकिन उन सो– काल्ड दलित राइटर्स के लेखन से कुछ नहीं होगा जो सिर्फ अपने दलितपन को अपने पुरखों पर हुए अत्याचारों का रोना रोते रहते हैं। वैसे भी अगर**

आपको अपने अधिकार पाने हैं तो स्ट्रगल कीजिए। अपना दुःख रोने से अधिकार नहीं मिलते।''[19]

शिक्षा से मिली को आत्मविश्वास के साथ–साथ संघर्ष करने की क्षमता भी मिलती है। उसे विश्वास है कि एक दिन ऐसा जरुर आएगा जब युवा पीढ़ी इस जाति–भेद की समस्या को जड से उखाड फैंकेगी। उसके अनुसार दलित लेखकों को पुरानी बातें, एवं इतिहास को दोहराना छोड़कर ऐसी बातें लिखनी चाहिए, जिससे दलितों में जागरुकता एवं परिवर्तन आए। मिली आधुनिक, शिक्षित दलित युवती है, अच्छे वातावरण, अच्छी शिक्षा, परवरिश, माता–पिता के सहयोग से वह अपने उज्ज्वल भविष्य के निर्णय लेने में सक्षम है। प्रस्तुत कहानी में मिली के द्वारा लेखक ने यह सद्धि किया है, कि दलित किसी से कम नहीं है, इसलिए ज़रुरत है कि वे इस बात को साबित करके दिखाएँ। जब तक वे डरते रहेंगे, रोते रहेंगे तब तक उन्हें हीनता की दृष्टि से देखा जाएगा। जब वे आत्मविश्वास के साथ अपनी योग्यता सिद्ध करेंगे, तब अपने आप उन्हें अधिकार, सम्मान और जीवन में सफ़लता मिलेगी। कहानीकार ने रोती–बिलखती दलित नारी से विपरीत आत्मविश्वासी, निडर, सजग दलित मिली का चित्रण करके आधुनिक दलित, नारी को वाचा दी है। कहानी का शीर्षक 'इस समय में' इक्कीसवीं सदी की और संकेत करता है। इस समय की दलित युवा पीढ़ी अपने माता–पिता की अपेक्षा अधिक मैच्योर है। अंग्रेजी मिश्रित भाषा का प्रयोग कहानी में किया गया है, जो वातावरण एवं समय के अनुरुप है। संवाद छोटे एवं अर्थपूर्ण हैं।

7. 'युज एंड थ्रो'– डॉ. पूरन सिंह

'यूज एंड थ्रो' कहानी में सवर्णों द्वारा दलितों का इस्तेमाल करके फेंक देने की आदत पर प्रकाश डाला गया है। कहानी की नायिका **श्यामा** एक दलित शिक्षित युवती है जिसे उसकी माँ राजो ने पॉच वर्ष की उम्र से अकेले ही पाला–पोसा है। श्यामा पढ़ लिखकर अफसर बन जाती है, जिससे राजो के जीवनभर के कष्ट भूल जाती है। राकेश एक शिक्षित दलित युवक है, जो श्यामा से अथाह प्रेम करता है। श्यामा और राजो दोनों राकेश की भावनाओं की कद्र करते हैं।

शिक्षित होने के कारण श्यामा का मेलजोल कई सवर्णों से बढ़ने लगता है। शांडिल्य, शर्माजी, गुप्ता जी आदि ऐसे सवर्ण व्यक्ति थे, जो अवसरवादी थे। श्यामा की प्रतिभा से परिचित होकर वे उसे दुर्गावाहिनी नामक महिला दल का उच्चपद देते हैं और बदले में उसके कंधे पर बंदुक रखकर अपने दुश्मनों पर वार करना चाहते हैं। श्यामा इस षड़यंत्र से अनभिज्ञ थी। किंतु राजो को जब पात चलता है, कि श्यामा दुर्गावाहिनी की महिलाओं को साथ लेकर मंदिर के पास बनने वाले मस्जिद को रोकने के लिए मोर्चा लेकर जाने वाली है, वह भी शांडिल्य के कहने पर। राजो के पुराने ज़ख्म ताज़ा हो जाते हैं। राजो अपनी एकमात्र बेटी को खोना नहीं चाहती। वह घबराकर बेहोश हो जाती है। चेतना लौटने पर वह राकेश और श्यामा को पच्चीस वर्ष पहले की एक घटना बताती है। श्यामा उस वक्त राजो के पेट में थी।

राजो के पति श्यामलाल का सुअरों का बाड़ा था। वे स्वयं यह कार्य नहीं करते थे, बल्कि नौकरों से करवाते थे। धन की कोई कमी नहीं थी। विवाह के कई वर्षो के बाद पिता बनने की ख़बर से राजो और श्यामलाल इतने अधिक प्रसन्न हो गए, जिसमें दलितों का जाना निषेध था, उस मंदिर में वे प्रवेश करते हैं। श्यामलाल के मंदिर

प्रवेश से गाँव में हंगामा हो गया, सभी सवर्ण उसे दंड देने के लिए उतावले हो गए। आर्थिक दंड श्यामलाल के लिए बड़ी बात नहीं थी। धूर्त ब्राह्मण यह जानते थे। सवर्ण ब्राह्मण शुक्ला और श्यामलाल के बीच का संवाद सवर्णों की अमानवीयता और दलित की दयनीयता पर प्रकाश डालता है–

> **"अच्छा, श्यामा तू बता कि शिव मंदिर की कितनी सीढ़ियाँचढ़कर तू मंदिर में घूसा था" वह शुक्ला जिसकी सूरत से ही मुझे चिढ़ थी बोला था।**
> **"मालिक ढंग से तो मुझे पता नहीं है लेकिन शायद पाँच सीढ़ियाँ चढ़कर ही हम मंदिर में पहुँचे थे। तेरे पापा भुलक्कड़ तो थे ही।"**
> **"ठीक है, पाँच सीढ़ियाँ चढ़कर शिव मंदिर में पहुँचा था तो तुझे ब्राह्मणों के जूतों में पानी होगा।"**[20]

सवर्णों का दलित पर अत्याचार करना उनके अहंकार को शांत करता है, साथ ही दलित यदि आर्थिक रुप से समृद्ध हों, तो उसे ऐसे षड़यंत्र में फँसाया जाता है, जिससे उसे यह ऐहसास दिलाया जाए कि वह कभी भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता। श्यामलाल को जबरन जूतों में पानी भरकर पिलाया जाता है। लंबा–चौड़ा शरीर का जवान श्यामलाल इस घटना से टूट जाता है। राजो अपने पति को ठीक करने का हर प्रयास करती है। सारी पूँजी और व्यापार खत्म हो जाता है। श्यामा के जन्म के बाद ही श्यामलाल पुरानी बातों और ज़ख्मों को भूल नहीं पाते हैं।

पाँच वर्ष बाद उनके घर में फिर खुशहाली लौट आई। जिन लोगों ने श्यामलाल का अपमान किया था, वे लोग श्यामलाल को कहते हैं–

> **"श्री श्यामलाल जी, आज हम सभी गाँव वाले बहुत मुसीबत में फँस गए हैं। नागों ने अपने–अपने फन फैला दिए ये हैं। तुम बहुत ही बहादुर और बुद्धिमान हो। आज पूरे समाज को तुम्हारी ज़रुरत है हिन्दू धर्म और हम सभी खतरे में हैं। मुसलमानों ने पाकिस्तान के इशारे पर हमारे शिव मंदिर को तोड़ने की साजिश रची है। वे दो एक दिन में ही शिव मंदिर को धराशायी कर देना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में हम सभी को एक साथ रहना होगा। यहाँ कोई जाति–पाँति नहीं है, सिर्फ प्यार का मसला है। तुम नहीं साथ दोगे तो हम लोग किसी का क्या कर लेंगे। हम जानते हैं कि तुम्हारे इशारे पर सभी वल्मीकि एक हो जाएँगे।"**[21]

सवर्णों की सोच बदलने का कारण यही था, कि आज उन्हें अपने बचाब के लिए एक ऐसे समूह की आवश्यकता थी, जो अपनी जान पर खेलकर उनकी रक्षा कर सकें और ऐसा कार्य भोले–भाले दलित ही कर सकते थे। जो उनके षड़यंत्र को नहीं जानते, समझते थे। राजो के लाख समझाने पर भी श्यामलाल उनका साथ देने चले जाते हैं। मासूम और बेबस असहाय लोगों के भोलेपन का फायदा सदियों से सवर्ण समाज उठाता आया है। मंदिर को बचाना एक धोखा था, वास्तव में मस्ज़िद गिरानी थी। लोगों की भीड मस्ज़िद को तोड़ने गई, जिससे दंगा भडक गया, पुलिस की फायरिंग में लाशों के अंबार लग गए थे। जिसमें से एक लाश श्यामलाल की थी। सबसे बड़ी और ज़रुरी बात यह थी कि मारे गए लोगों में सभी जाति के लोग थे, किन्तु ब्राह्मण एक भी नहीं था।

साम्प्रदायिक झगड़ों में उच्च वर्ग के लोग दलितों का इस्तमाल अपने बचाव में करते आए हैं। क्योंकि इनकी मदद के बिना वे स्वयं अपना बचाव करने में असमर्थ हैं। ब्राह्मणों का स्वार्थ सिद्ध हो जाता है, किंतु राजो अपनी बेटी को लेकर शहर आ जाती है। मेहनत–मजदूरी करके वह अपनी बेटी को शिक्षित बनाती है। वर्षों बाद आज जब वह यह देखती है, कि दुबारा वैसी ही घटना उसकी बेटी के साथ घटने जा रही है, तो वह अपने आपको नहीं रोक पाती। श्यामा अपने माता–पिता के कड़वे अतीत को जानकर सवर्णों के वास्तविक रुप को समझ जाती है। 'यूज एंड़ थ्रो' की बात जो वर्षों पहले उसके पिता के साथ की गई थी, वह अब स्वयं के साथ नहीं होने देगी। वह राजो को विश्वास दिलाती है, कि शांडिल्य की बात में न आकर स्वयं की बुद्धि से स्वयं निर्णय लेगी। वह शिक्षित युवती है और अपने निर्णय अब वह भावनाओं में बहकर नहीं बल्कि सोच–समझकर लेगी।

प्रस्तुत कहानी में लेखक ने सवर्णों द्वारा दलितों का 'यूज एंड़ थ्रो' की वर्षों से चली आ रही नीति को प्रकट किया है, आज की नई पीढ़ी भी उनके षडयंत्र में फँसती जा रही है। आवश्यकता है, उन्हें जागरुक करने की, ताकि राजो की तरह उन्हें जीवन भर पछताना न पड़े कहानी की भाषा सरल एवं बोधगम्य है। कहानी का वातावरण शहर का है, किन्तु फ्लेशबेक की घटनाओं के चित्रण में गाँव के रुढ़िचुस्त, परंपरावादी, अस्पृश्यता को महत्त्व देने वाले समाज का चित्रण है। संवाद छोटे हैं किन्तु अपने गुणों से युक्त हैं।

7. 'और वह पढ़ गई' डॉ. कुसुम वियोगी

डॉ. कुसुम वियोगी द्वारा रचित प्रस्तुत कहानी की नायिका **चेतना** पन्द्रह वर्षीय लड़की है। वह दसवीं कक्षा में पढ़ती है। उसकी माँ श्यामो मोहल्लों में मैला ढ़ोने का काम करती है। श्यामों का पति शराबी, जुआरी है। घर का खर्च श्यामों के कामकाज से चलता है। ऐसी स्थिति में श्यामों चेतना को भी अपने कार्य से जोड़ने के लिए मोहल्लों में ले जाती है। चेतना शिक्षित लड़की है, इसलिए उसे इस मैला ढ़ोने वाले कार्य से घृणा होती है। इस पर श्यामों उसे झाड़ू से मौहल्ले के बीच पीटने लगती है। लेखक उसे बचाते हैं और पढ़ने की उसकी ललक देखकर उसे स्वावलंबी एवं उच्च शिक्षा पाने की सलाह देते हैं, ताकि ऐसे घृणित कार्य उसे जीवन में कभी न करने पड़ें।

चेतना को अच्छी सलाह देने वाला पूरी बस्ती में कोई नहीं है, क्योंकि वाल्मीकि बस्ती में कोई शिक्षित है ही नहीं। चेतना लेखक से अपनी बस्ती के वातावरण का वर्णन करते हुए कहती है–

> **"कोई सलाह देने वाला नहीं है, अंकल ! हमारी बस्ती तो दारुबाजों की, जुआरियों की बस्ती है। आये दिन सुअरों की टांगे पकड़ पेट में छुरी घुच्च.....रोज–रोज की चीं–चीं, चिल्ल–पों सुन–सुन मेरे कान पक से गये हैं। कौम की दाढ़ में खून जो लग गया है मांस–मट्टी का, झाड़–फूस जलाकर गली के बीचों–बीच सूअरों को भूनना, कितना अजीब–सा लगता है अंकल ! और हां, तुम तो नाक पर हाथ रखकर निकल भी नहीं सकते, मोहल्ले में घुसना तो दूर। मर्दों की टोली द्वारा हुक्के की गुड़गुड़ाहट, सारा दिन चिलम के धुएं में फूंक देना, कैसी अजीब–सी दिनचर्या है। मर**

भी तो नहीं सकती। मैं तो पढ़ना चाहती हूँ लगन तो आखिर लगन ही होती है।"[22]

वाल्मीकि समाज की बस्ती में चेतना जैसी समझदार, शिक्षित, जागरुक लड़की को घुटन महसूस होती है। शिक्षा के लिए वातावरण का बहुत महत्त्व है, ऐसे घृणित वातावरण में चेतना के विचारों को समझने वाला कोई नहीं है। लेखक की सलाह से चेतना में आत्मविश्वास जागता है। वह लगन से दिन–रात पढ़ाई पर ध्यान देने लगती है।

एक बार वह बीमार पड़ती है। अंधविश्वासी उसके समाज में बीमारी को दवाईयों से नहीं झाड़–फूँक से दूर करने के लिए चेतना की दुर्गती कर देते हैं। लेखक जब उसका हाल–चाल पूछने उसके घर पहँचते हैं, तो कह उठती है–

"अंकल मुझे बचाओ। ये लोग मुझे मार देंगे मैं बीमार हूँ, कभी झाड–फूंक, कभी टोटका, तो कभी ढोल–डमरुओं की आवाजें सुन–सुकर माथा फट–फट पड़ता है। उकता गई हूं, रोज–रोज की झाड–फूँक से कोई 'भूतनी' कोई 'चुड़ैल' का साया बताता है मेरे ऊपर अंकल ! मेरे बाल नोंच–नोंच डाले हैं। इन कमीने स्याने जादूगरों ने, देखो तो सही।"[23]

आज भी हमारे समाज में शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्गों में अंधविश्वास देखा जा सकता है। शिक्षित की तुलना में अशिक्षितों को ओझा (स्याने) अधिक मूर्ख बनाते हैं, धन वसूलते हैं। ऐसी स्थिति में बीमार व्यक्ति ठीक तो नहीं होता बल्कि मृत्यु के निकट पहुँच जाता है। अविद्या किसी नरक के समान है, जो व्यक्ति को ऐसे फंसाती है कि, उससे बाहर आना कठिन हो जाता है।

चेतना को लेखक का सहारा मिलता है, इसलिए उसकी जान बच जाती है। यही चेतना बड़ी होकर बी.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करती है। लेखक की आँखों में खुशी के आंसू छल–छला आए क्योंकि "और वह पढ़ गई।" इतने संघर्षों के बाद ऐसे अनपेक्षित वातावरण में भी चेतना अपने लक्ष्य की प्रप्ति करने में सफल होती है।

प्रस्तुत कहानी में श्यामों एक दलित स्त्री है, जिसके परिश्रम से घर चलता है। उसकी तरह ही उस समाज की अधिकतर स्त्रियाँ मौहल्ले में मैला ढ़ोने का काम करती हैं, अपने परिवार को आर्थिक रुप से मदद करती हैं। जबकि पुरुष अधिकतर शराबी, जुआरी, मार–पीट करने वाले, स्त्रियों पर अत्याचार करने वाले होते हैं। आर्थिक रुप से पुरुष उतनी गंभीरता से परिवार को सहायक रुप नहीं बनते, जितना उन्हें बनना चाहिए। दलित स्त्री स्वयं तंबाकू खाती है और अपनी पुत्री चेतना को गालियाँ देती है, मारती है क्योंकि वह मैला ढ़ोने में उसकी सहायता नहीं करती। श्यामों की भाषा उसके पात्र के अनुसार ली गई है वही चेतना भी उसकी ही पुत्री है, किन्तु शिक्षित है, इसलिए उसकी भाषा शुद्ध है।

चेतना जैसे पात्र से हमें एक बात सीखने को मिलती है, कि व्यक्ति चाहे जैसे भी वातावरण में रहता हो, यदि उसके विचार शुद्ध हों तो वातावरण की गंदगी उसका स्पर्श नहीं कर सकती। उसे लक्ष्य तक पहुँचने से नहीं रोक सकती।

8. 'रिश्वत'– कावेरी

कावेरी जी द्वारा रचित **'रिश्वत'** कहानी में लेखिका ने आत्मकथात्मक शैली में बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार एवं दलितों की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। नायिका स्वयं सुशिक्षित महिला है। अपने ससुराल और मायके को जीवनभर मदद करने वाली नायिका अपने पति के साथ मिलकर यह सपना देखती है, कि उसके दोनों पुत्र इन्जीनियर और डॉक्टर बनेंगे। बड़ा बेटा जब पढ़ रहा था। तब उनके सहकर्मी एवं परिचित मिलते तो व्यंग्यबाण छोड़ते–

> **"आपके बेटे पढ़ने में अच्छे हैं। ऊपर से आरक्षण नौकरी तुरंत मिल जाएगी।"**[24]

अधिकतर लोगों के विचार ऐसे होते हैं, कि जिन्हें आरक्षण मिलता है, उन्हें नौकरी में कोई परेशानी नहीं होती, किन्तु नायिका के बड़ा बेटे को इंजीनियरिंग पास किए आँठ वर्ष हो गए थे। परंतु ढंग की नौकरी नहीं मिली थी। हर जगह रिर्टन एक्जाम में पास होने पर भी, मौखिक में पुत्र की असफलता देखकर, आरक्षण में भी आरक्षण की बात स्पष्ट हो जाती है। बिना रिश्वत और ऊँची पहचान के स्वयं के बलबूते पर सिलेक्शन नहीं होता है। नायिका का बड़ा पुत्र तो शांत स्वभाव का था, किन्तु छोटा अपनी असफलता का कारण अपनी माँ को समझता है। फोन पर अपनी माँ से कहता है–

> **"माँ ! तुमने सिर्फ पैसा कमाया और हम लोगों को देती रही हो। कभी सोचा है आजकल कैसे नौकरी मिलती है। चौकन्ना रहना पड़ता है, पैरेन्टस को। मैं क्या कर रहा हूँ या नहीं कर रहा हूँ, कभी ख़बर ली। मुझे अब कोई नौकरी करनी है। पहले हाथ में जॉब रहेगा, बाद में तैयारी।"**
>
> **मैंनें कहा, "बेटा तुम लोग खुद समझदार हो गए हो। अपने कैरियर के बारे में खुद निर्णय लेने लायक हो जो कुछ करना चाहते हो मै तैयार हूँ।"**
>
> **उसने कहा–"अब वह समय नहीं रहा, माँ। गार्जियन को जागरुक होना पड़ेगा। भैया के लिए क्या सोचा। अब बिना पैरवी और रिश्वत के नौकरी का सपना छोड़ दो। एन. टी. पी. सी. की लिखित परीक्षा में भैया पास हो गया है। साक्षात्कार के लिए तैयार हो जाओ, कम से कम पाँच लाख लगेगा।"**[25]

गार्जियन की जागरुकता आज इसी को कहा जाता है, कि अपने बच्चों के भविष्य के लिए उन्हें मार्गदर्शन के साथ–साथ उनकी नौकरी के लिए, उज्ज्वल भविष्य के लिए रिश्वत की मोटी रकम इकट्ठी करके रखें। आवश्यकता पड़ने पर मंत्री, आला अधिकारी को रिश्वत देकर अपने माता–पिता होने का कर्त्तव्य निभाएँ। सुनने में यह बात कड़वी लगती है, किंतु यह सत्य है। आज के समय में योग्यता के साथ–साथ रिश्वत भी होना ज़रुरी है, अन्यथा योग्य होने के बावजूद आप अयोग्य हैं।

नायिका स्वयं जीवन में परिश्रम के बल पर नौकरी करके अपने परिवार को आर्थिक रुप से मदद करती है। भाग्य और भगवान पर नहीं, वह अपनी मेहनत पर

भरोसा करती है, उसने अपने बच्चों को भी यही शिक्षा दी, किन्तु उसमें उसे सफलता नहीं मिली। पति शिक्षक थे, छोटी–सी नौकरी में पूरे परिवार की जिम्मेदारी के बीच अपने दोनों बेटों को उच्च ओहदे पर नौकरी करते देखना चाहते थे। आज बेटों के लिए सिफारिश करते दर–दर घूमने को मजबूर हैं, क्योंकि नौकरी के लिए रिश्वत भी दें तो किसी दें, ये वे नहीं जानते। कई जगह बच्चों को नौकरी और पढ़ाई के लिए रिश्वत दी भी गई लेकिन रुपये दूब गए। नायिका की उम्मींदे उस समय बरगद के समान विशाल थीं, जब बच्चे अच्छी तरह पढ रहे थे। वह सोचती थी कि जीवन के अंतिम दौर में सुखद दिन काटेगी, लेकिन उसके यह सपने चूर–चूर हो जाते हैं। रिश्वत के लिए दस लाख की मोटी कीमत एकत्र करना सरल नहीं है। जीवनभर जिन्हें मदद दी वे आज मुकर गए हैं, ऐसी स्थिति में वह स्वयं बीमार पड़ जाती है। इलाज में लाखों रुपये लग जाते हैं। कहानी का शीर्षक 'रिश्वत' शुरु से अंत तक कहानी की समस्या के रुप में हमारे समक्ष रहता है। आरक्षण मिलने पर भी, रिश्वत देने पर ही अच्छी नौकरी मिलती है, ऐसा आज हमारे समाज का वातावरण है। सवर्ण युवकों को प्राइवेट नौकरी भी जान–पहचान के कारण मिल जाती है, जबकि दलित युवकों को योग्य ताके बावजूद कैम्पस सलैक्शन में नहीं लिया जाता। कैम्मस सलैक्शन भी वहीं होते हैं, जिस कॉलेज में आला अधिकारीगण के बच्चे पढ़ रहे हों।

भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, अस्पृश्यता जैसे दूषण को प्रस्तुत कहानी में देखा जा सकता है। नायिका अपने परिवार एवं बच्चों के लिए पहले भी संघर्ष कर रही थी और बच्चों के योग्य बनने के बाद भी उनकी नौकरी और रिश्वत एवं उज्ज्वल भविष्य के लिए संघर्ष कर रही है, उस पर भी आरक्षण का ताना तो सुनना ही पड़ता है।

9. 'सिलिया'– सुशीला टाकभौरे

सुशीला टाकभौरे की प्रस्तुत कहानी एक दलित शिक्षित युवती **शैलजा ऊर्फ सिलिया** की है। यह एक दलित चेतना की कहानी है, जिसमें पढी–लिखी युवती सिलिया अपने अछूत होने का कारण जानना चाहती है। वह उन परंपराओं के कारणों का पता लगाना चाहती है, जिन्होंने उन्हें अछूत बना दिया है। जाति भेद मिटाने के लिए वह उच्च शिक्षा प्राप्त करके आत्मसम्मान से जीवन जीने की अभिलाषा रखती है।

ग्यारहवीं कक्षा में पढने वाली सिलिया साँवली–सलोनी, मासूम, भोली, सरल और गंभीर स्वभाव की थी। उसके माता–पिता, बड़ा भाई और नानी उसे खूब पढ़ाना चाहते थे। सिलिया भी पढ़ने में अच्छी थी। सन् 1960 वर्ष में 'नई दुनिया' में विज्ञापन, छपा था, जिसमें लिखा था 'शूद्र वर्ण की वधू चाहिए।' मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल के जाने माने युवा नेता सेठी जी किसी अछूत कन्या से विवाह करके समाज के समक्ष एक आदर्श रखना चाहते थे। वे मैट्रिक पास दलित युवती से विवाह करने को तैयार थे।

सिलिया होशंगाबाद जिले के छोटे से गाँव में रहती थी। इस विज्ञापन को पढ़कर गाँव के पढे लिखे लोग, ब्राह्मण, बनियों ने सिलिया का विवाह सेठी जी से करवाकर उसका कल्याण करने की सलाह दी। किन्तु सिलिया की मॉ इस तरह के विवाह को राजनीति ही मानती है। वह ऐसे घर में अपनी बेटी का ब्याह करना चाहती है, जहाँ उसे मान–सम्मान मिले। सवर्ण समाज में दलित स्त्री को वह इज्जत नहीं मिल सकती। यदि उसे सम्मान पूर्ण जीवन बीताना ही है, तो वह अपने ही दलित समाज में

रहकर भी वह पा सकती है। पढ़–लिखकर वह स्वयं अपनी किस्मत सँवार सकती है। सिलिया की माँ के ऐसे विचार सिलिया का हौंसला बढ़ाते हैं।

सिलिया को वह घटना अच्छी तरह याद है। जब वह बारह वर्ष की थी। उसके मामा की बेटी मालती ने प्यास लगने पर उस कुएँ से पानी निकाल कर पिया था, जो सवर्णों का कुआँ था। एक सवर्ण महिला जिसका घर कुएँ के पास ही था। वह मालती को देख लेती है, और उसकी माँ से कहती है–

> **"ओरी बाई, दौड़ो री, जा मोडी को समझाओ.... देखो तो, मना करने के बाद भी कुएँ से पानी भर रही है। हमारी रस्सी–बाल्टी खराब कर दई जाने...। क्यों बाई, जेहि सिखाओं हो तुम अपने बच्चों को, एक दिन हमारे मूँड पर मूतने को कह देना। तुम्हारे नज़दीक रहते हैं तो का हमारा कोई धरम– करम नहीं है ? का मरज़ी है तुम्हारी, साफ–साफ कह दो।"**[26]

जति–पाति का भेद–भाव दलित बच्चों की मानसिकता पर बचपन से ही घर गहरे बैठ जाता है। ऐसे कड़वे अनुभव उन्हें बचपन में ही सीखा देते हैं, कि वे अछूत है और सवर्ण उनसे अधिक शुद्ध और उच्च हैं। सवर्ण महिला के कड़वे वचन मामी को बहुत बुरे लगे। गुस्से में वह मालती की खूब पीटाई करते हैं और कहती हैं–

> **"घर कितना दूर था, मर तो नहीं जाती। मर ही जाती तो अच्छा रहता,इसके कारण उससे कितनी बातें सुननी पड़ीं। मामी ने दुःख और अफ़सोस के साथ अपना माथा ठोंकते हुए कहा था, हें भगवान, तूने हमारी कैसी जात बनाई।"**[27]

हमारी वर्ण व्यवस्था में दलितों को गुलामी, अपमान, सेवा, दुख ही मिला है। ईश्वर की दृष्टि में सभी समान हैं, कोई–छोटा–बड़ा नहीं है, किंतु मनुष्यों ने ये भेद–भाव की लकीर खींच दी है। जिसे मिटाना सरल नहीं है।

सिलिया जब दस वर्ष की थी, तब की एक घटना उसे याद है। पाँचवीं कक्षा के टूर्नामेन्ट हो रहे थे। खेल–कूद की स्पर्धाओं में उसने भी भाग लिया था। अपने कक्षा–शिक्षक और सहपाठियों के साथ वह तहसील के स्कूल में गई थी। उसकी स्पधाएँ आरंभ में ही लेने से जल्दी पूरी हो गई। उसके शिक्षक उससे कहते हैं, कि यदि तुम चाहो तो अपने किसी रिश्तेदार के घर जा सकती हो। सिलिया अपने मामा–मामी के दलित कस्बें में शिक्षक को लेकर जाना उचित नहीं समझती। अंत में शिक्षक हेमलता नाम की एक सवर्ण छात्रा के रिश्तेदार के घर सिलिया को भेज देते हैं। वैसे तो हेमलता, सिलिया की अच्छी सहेली थी, लेकिन जिस घर में वह जाती है, वहाँ हेमलता को पानी दिया जाता है, किन्तु सिलिया को नहीं। क्योंकि उन्हें पता चल जाता है कि वह अछूत है।

सिलिया को उन्हें अधिक झेलना न पड़े इसलिए उससे पता पूछकर उसके मामा–मामी के घर पहुँचा दिया जाता है। यह घटना सिलिया के मस्तिष्क पर अपनी छाप छोड जाती है। वह बार–बार सोचती है, कि वह प्यासी है, यह जानकर भी उन्होंने पानी क्यों नहीं दिया ? क्या प्यासे को पानी न देना भी सर्वणों मानवीयता है ? ऐसा करने के बाद भी वे कैसे हँसकर बात कर सकते हैं ? ये लोग मुखौटा चढ़ाकर किस तरह जी सकते हैं ? आदि प्रश्न उसके मन को सताने लगते हैं।

अपने बीते कल की घटनाओं को याद करके सिलिया समझ जाती है, कि सवर्ण भले बडी–बड़ी बातें करें, दिखावा करें, किंतु किसी दलित को नहीं अपना सकते। अख़बार में विज्ञापन की बात पर वह सोचती है कि, यह सेठी जी महाशय ज़रुर आडंबर कर रहे हैं। आज तक किसी सवर्ण ने ऐसी सामाजिक क्रांति लाने के बारे में नहीं सोचा। ऐसे व्यक्ति का साथ मिलने पर वह जरुर अपनी जाति के लिए कुछ अच्छा कर सकती थी। किंतु बाद में वह सोचती है, कि यदि उसे सम्मान पाना है, तो अपने बल पर पा सकती है। दूसरे के सहारे अपने निज को खोकर, शतरंज के मोहरे के समान दूसरे के इशारे पर वह क्यों चले ? वह सोचती है–

> **"हम क्या इतने भी लाचार हैं, आत्मसम्मान रहित है, हमारा अपना भी तो कुछ अंह भाव है। उन्हें हमारी ज़रुरत है, हमको उनकी ज़रुरत नहीं। हम उनके भरोसे क्यों रहें। पढ़ाई करुँगी, पढ़ती रहुँगी शिक्षा के साथ अपने व्यक्तित्व को भी बड़ा बनाऊँगी जिन्होंने उन्हें अछूत बना दिया है। विद्या–बुद्धि और विवेक से अपने आपको ऊँचा सिद्ध करके रहूँगी। किसी के सामने झूकूँगी नहीं। न ही अपमान सहूँगी।"**[28]

सिलिया के ये विचार पढ़ी लिखी दलित युवती के विचार हैं,. जो आत्मबल पर, शिक्षित बनकर अपनी योग्यता के सहारे सवर्ण समाज के बीच सम्मान पाने का साहस रखती है। आत्म–सम्मान पूर्ण जीवन जीने के लिए दूसरे का सहारा न लेकर स्वयं अपने रास्ते बनाने को तैयार हो जाती है।

प्रस्तुत कहानी एक दलित शिक्षित युवती के संघर्ष की कहानी है। जीवन के कड़वे अनुभवों से कई बार संघर्ष करने के लिए शक्ति और मार्ग भी मिल सकता है। सिलिया अपने कटु अनुभवों से ही यह सीख लेती है,कि यदि उसे सम्मानपूर्ण जीवन जीना है, तो उच्च शिक्षा प्राप्त करके, वह सवर्ण समाज के बीच सिर उठाकर खड़ी हो सकती है। परंपराओं और रुढियों को तोड़ने के लिए किसी–न–किसी को प्रयास तो करना ही होगा।

10. 'मैं मइया थी'– सरिता भारत

सरिता भारत द्वारा रचित **'मैं मइया थी'** कहानी आत्मकथानात्मक शैली में लिखी गई कहानी है। पाँच वर्ष की आयु में कथानायिका अपने पिता को खो देती है, वहीं से उसके जीवन में अभाव, दुख, पीड़ा की शुरुआत हो जाती है। पिता को अत्यधिक प्रेम करने वाली नायिका एक ऐसे दलित समाज में रहती थी, जहाँ दबे–कुचले परम्परावादी समाज के नियमों के नीचे उनकी चीख–पुकार उन्हीं तक सिमट कर रह जाती थी। बच्चों का पालन–पोषण माँ की जिम्मेदारी बन गयी। उनके समाज का नियम था, कि विधवा स्त्री या तो दूसरा विवाह करे या गाँव छोड़कर चली जाए। माँ को अपने कम उम्र देवर के साथ विवाह करना पडता है। यहाँ हम देखते हैं, कि कई बार दलित समाज के नियम–कानून दलित महिलाओं की स्वतंत्रता को छीन लेते हैं, उन्हें विवश कर देते हैं, कि यदि वह विधवा है, अकेली है तो उसके जीवन का निर्णय लेने का अधिकार समाज को अपने आप मिल जाता है।

कथानायिका की माँ पाँचवी पुत्री को जन्म देती है। माँ और चाचा के बीच इस वजह से ज्यादा झगड़े बढ़ते हैं। माँ साइकिल चलाना सीखकर नौकरी करके बच्चों की परवरिश में सहयोग देती है। उसके पिता आजीवन अपने समाज की बुराइयों को

हटाने के लिए संघर्ष करते रहे, परिवर्तन लाने का प्रयास करते रहे, किन्तु आकस्मिक मृत्यु से अधिक कुछ न कर पाए।

कथानायिका जिस समाज में और माहौल में रहती थी, वहाँ की स्त्रियों पर देवी आया करती थी। पिता की मृत्यु, उनका अभाव, घर के झगड़े, अकेलापन, मानसिक तनाव आदि के चलते नवरात्रि के समय में कथानायिका पर अचानक देवी आने लगी। लोग देवी के दर्शन करने आते अपनी समस्या सुनाते मैया समाधान करतीं। इससे घर में झगड़े खत्म होने लगे। शांति का माहौल देखकर देवीय शक्ति पूरी तरह से उसकी मानसिकता पर छा जाती है। यहाँ कहा जा सकता है, कि कई बार व्यक्ति जब अपनी भावनाओं, संवदेनाओं को अधिक समय तक दबाता है या रोकता है, तब कभी ऐसी परिस्थिति भी आ जाती है जब उसका स्वयं पर काबू नहीं रहता। कथानायिका जिस वातावरण में रहती थी, वहाँ लोगों में अंधविश्वास, अशिक्षा, मारपीट करना, शराब पीना, स्त्रियों का शोषण आदि के कारण मानसिक तनाव उस पर हमेशा रहता था। जो विरोध वह आम तौर पर समाज या घर के लोगों से पीड़ित होकर नहीं कर पाती थी, उसे वह मइया बनकर कर सकती थी। हालाँकि यह मनोवैज्ञानिक रुप से उसे कुछ समय के लिए तृप्ति देता है, किन्तु इससे 14 वर्षीय क़थानायिका के शरीर और मन पर बुरा प्रभाव पडता है।

स्कूल में प्रोत्साहन मिलने से वह पढाई के साथ–साथ इतर प्रवृतियों में रुचि बढ़ाने लगती है। सुनील नामक अध्यापक के प्रोत्साहन देने पर कि तुममें बहुत प्रतिभाएँ हैं, वह कहती है–

> **"वे मेरे छात्र जीवन में पहले शख्स थे जिन्होंने तारीफ की, वरना दलित छात्रा में भी प्रतिभा हो सकती है, शिक्षा जगत ने कब देखा है ?"**[29]

बच्चों की परवरिश पर उनके वातावरण का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस समाज में दलित छात्रा को कभी प्रोत्साहन न मिला हो, या सवर्णों द्वारा भी उन्हें अवहेलना ही मिलती है। ऐसी स्थिति में दलित छात्रा का मनोबल उसके अध्यापक बढ़ाते हैं। उसका नतीजा अच्छा होता है। अच्छी शिक्षा प्राप्त करके वह एक शिक्षिका बन जाती है और वह मानसिक तनाव से मुक्त होने के साथ–साथ देवी और मैया से भी मुक्त हो जाती है। यहाँ हम देखते हैं, कि शिक्षा में कितनी शक्ति है। शिक्षित अपने जीवन में संघर्ष करते हुए आगे बढ़ सकता है, प्रगति कर सकता है, जबकि अशिक्षित उसी अंधविश्वास, परंपरा, रुढ़िवादिता के कुँए से नहीं निकल पाते। कहानी का शीर्षक 'मैं मइया थी' बहुत आकर्षक है। कहानी में संवाद हैं ही नहीं ऐसा कहा जा सकता है। आत्मकथनात्मक शैली में लिखी गई कहानी पारिवारिक झगड़े के बीच बच्चों पर पड़ते बूरे प्रभाव को प्रस्तुत किया गया है। मानसिक तनाव में व्यक्ति ऐसा व्यवहार करने लगता है, जैसा कि कथानायिका ने किया था। संपूर्ण कहानी में एक ऐसे दलित समाज का वर्णन है, जहाँ अंधश्रद्धा जड़ तक जीम हुई है, उसी के अंतर्गत देवी आने की बात को देखा जा सकता है। साथ ही दलित समाज में दलित स्त्रियों की स्थिति अधिक दयनीय है, यह भी देखा जा सकता है।

11. 'हम कौन हैं ?– रजत रानी 'मीनू'

रजत रानी 'मीनू' द्वारा रचित कहानी **'हम कौन हैं ?'** में लेखिका ने शहरों में जाति को लेकर जो भेदभाव किया जाता है, इस समस्या पर प्रकाश डाला है।

कथानायिका जब शहर में आती है, तो वह एक संतोष की साँस लेती है, कि कम–से–कम शहर में तो जातिभेद की समस्या का सामना नहीं करना पड़ेगा। चंदौसी में रहते हुए ऐसी समस्या वह झेल चुकी थी। दिल्ली जैसे शहर में लोग नए विचारों को अपना रहे हैं, शिक्षित हैं इसलिए भेद–भाव को मिटाकर प्रगति कर रहे हैं। कथानायिका का भ्रम तब टूटता है, जब उसकी बच्ची पहले दिन स्कूल से लौटती है और पूछती है कि–

> **"मम्मी बताओं न हमारे सरनेम क्या हैं ? मैडम कल मुझसे फिर सवाल पूछेगी।"**[30]

उमा जिस चीज़ को छिपाना चाहती थी वह सामने खड़ी हो जाती है। अपनी बच्ची को उन्होंने सरनेम नहीं बताई है, क्योंकि सरनेम बताने से ही लोग जाति पहचान जाते हैं। दलित जाति के व्यक्ति को हमेशा हीन दृष्टि से ही देखा जाता है, इसलिए उनकी बच्ची इस हीन भावना का शिकार न बने, ऐसा वे चाहती है। उमा और उनके पति अपनी बच्ची की परवरिश अच्छे वातावरण में करना चाहते हैं, जहाँ उस पर पुरानी पीढ़ी के शोषण की परछाई भी न पड़े। जो अपमान, अत्याचार उनके पूर्वजों ने झेला है अब वे नई पीढी के बच्चे न झेले, इसलिए वे गाँव छोड़कर शहर में आते हैं।

यहाँ पर लेखिका ने शहर में होने वाले जाति–पाति के भेद को प्रस्तुत किया है। स्कूल के शिक्षक पहले ही दिन बच्चों से उनके परिचय में उसकी जाति के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। विद्यार्थी किस जाति का है ? यह जानकर उसके साथ कैसा व्यवहार करना है ? यह उसके बाद ही तय किया जाता है। बच्ची अज्जू की बातें सुनकर कथानायिका उमा सोचती है कि–

> **"पब्लिक स्कूल में भी सरनेम पूछा जाता है। यानी जाति पूछने का मॉडर्न तरीका। सरकारी स्कूलों के ब्राह्मणवादी संस्कारों के कर्मकाण्डी अध्यापक और ये मिशनरी स्कूलों में अंग्रेजी प्रभाव की आधुनिक शिक्षिकाएँ, क्या फ़र्क हैं दोनों में ?"** [31]

दलित छात्रों का शोषण गाँव में और शहर में भी है। गाँव में शोषण का तरीका अलग है और शहर का अलग। यहाँ शोषण में भी आधुनिकता आ गई है, जिसके तहत सरनेम जानकर मिशनरी स्कूल में भी बच्चों में जाति भेद किया जाता है।

उमा की बच्ची अज्जू बिना सरनेम लगाए फोर्थ स्टैंडर्ड में पहुँच जाती है। क्लास टीचर बार–बार उससे सरनेम पूछती है। बिना सरनेम की वह अकेली छात्रा है। सभी को स्कूल में शंका हो जाति है, कि बिना सरनेम वाले नीची जाति के होते हैं। जाति क्या होती है, यह बच्चे नहीं जानते, यह भेद–भाव तो बड़े लोग उनके मस्तिष्क में ठूसते हैं। अज्जू रोज़–रोज़ के प्रश्न से तंग आकर माँ से प्रश्न पूछती है, कि हम कौन हैं ? अज्जू अपने आप को इसलिए और बच्चों से अलग महसूस करती है, क्योंकि सबकी कोई–न–कोई सरनेम है और दूसरी बात यह कि उनसे कई बार एक ही प्रश्न नहीं पूछा जाता। उमा के न चाहते हुए भी अज्जू दलित जाति में पैदा होने का दुःख झेलती है। शिक्षित माता–पिता की पुत्री अज्जू अबोध है, वह हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई धर्म को पहचाने लगी है, किन्तु वह नहीं जानती कि नीची जाति क्या होती है ? आखिर यह भेदभाव कब तक बच्चों के बाल मानस पर बोझ डालता रहेगा ? यह प्रश्न हमारे समक्ष

आता है। कहानी में उमा और अज्जू के बीच के संवाद छोटे और चोटदार हैं। कहानी का वातावरण शहर का है, किन्तु समस्या गाँव की ही है 'जातिभेद'।

13. 'अब का समय'– प्रहलाद चन्द्र दास

'अब का समय' कहानी प्रह्लाद चन्द्र दास द्वारा रचित है। प्रस्तुत कहानी में **अंजू** और **विजय बाबू** शिक्षित दलित पात्र हैं। विजय बाबू स्वयं इंजीनीयर हैं और ऊँचे ओहदे पर कार्य कर रहे हैं। उनके बच्चे सतीश और रश्मि हैं। सतीश बहुराष्ट्रीय कंपनी में कार्यरत है और रश्मि एम. बी. बी. एस करके पी. जी. की रही है। बच्चों के बड़े हो जाने पर अब के समय में उन्हें अपनी शर्तों पर या अपनी मर्जी के मुताबित जबरन चलाना कठिन हो गया है, चाहे वह करियर की बात हो या विवाह की। सतीश अपनी इच्छा से अंर्तरजातीय विवाह करना चाहता है। रश्मि भी तय कर चुकी है, कि वह अपने सहपाठी के साथ विवाह करेगी। अंजू ने कल्पना नहीं की थी, कि वह जीवन में ऐसी समस्या का सामना करेगी। बच्चे माँ को समझाने का भरसक प्रयत्न करते हैं किन्तु अंजू नहीं मानती। पति भी अंजू को समझाते हैं, कि बच्चों की खुशी में ही हमारी खुशी है, फिर भी अंजू इस तरह जाति बाहर विवाह को दिल से नहीं स्वीकार पाती।

अंजू अपने घर आए अपने गाँव के सवर्ण सहपाठी दीपक चौबे और विजय से मिलकर अति प्रसन्न होती है। वर्षों बाद उमा इनसे मिली थी। जाति का भेदभाव भूलकर दीपक और विजय अंजू के घर चाय–नाश्ता, यहाँ तक की खाना भी खाते हैं। अंजू एक ऐसे गाँव में रहती थी, जहाँ पर दलित जाति के घर यदि बारात आती है, तो दूल्हा मोटर गाड़ियों में नहीं बल्कि बैल गाड़ी में ही आ सकता था। आज उसी गाँव का सवर्ण दीपक, विवके उसके समक्ष गिडगिड़ाते हुए कहता है–

> **"मेहमान जी, मैं मर जाऊंगा, मेरे बाल–बच्चे भूखों मर जाएंगे। मुझे बचा लीजिए। यह फाइल थ्रू नहीं हुई तो पेमेंट की बात तो जाने दीजिए, कंपनी के नियमों के अनुसार मैं ब्लैक–लिस्टेड भी हो जाऊंगा। फिर तो यहाँ से मुझे कोई काम भी नहीं मिलेगा।"**[32]

सवर्णों को स्वार्थवश दलितों के समक्ष झुकने में तकलीफ तो होती है, किन्तु ये इतने स्वार्थी होते हैं कि उगते सूरज को सलाम करने में ही अपनी भलाई समझते हैं। विजय बाबू उनकी आत्मीयता देखकर प्रसन्न होते हैं, किंतु अंजू पूरानी बातों को नहीं भूलती वह उनसे कहती है–

> **"क्या पूछते हो ? इनसे छू जाने भर से तो हमारी पिटाई हो जाती थी। यह जो तुम–ताम' करके बात कर रही थी मैं, वहां तो, ये उम्र में बड़े हों या छोटे, सबों को 'आप' से ही संबोधित करना पड़ता था। स्कूल में इनके लिए पीने के पानी अलग इंतजाम होता था और हमारे लिए अलग।"**[33]

अंजू शिक्षित थी, अच्छे घर और वर को प्राप्त करके वह अपने जीवन के अभावों और बचपन की अस्पृश्यता के वातावरण को भूल नहीं पाई थी। वह भूतकाल को भविष्य पर हावि नहीं होने देती और विजय एवं दीपक के लिए पति से सिफारिश करके उनकी फाइल पास करवा देती है।

विवेक एवं दीपक का छोटा भाई पंकज आज भी गाँव के वातावरण एवं परंपरावादी अस्पृश्यता को नहीं भूला। अंजू एवं विजय बाबू के ऐहसानों को नज़र अंदाज करता हुआ अपनी महेमान अंजू का अपमान करता हुआ वह कहता है–

> **"यह तुम–ताम क्या लगा रखी है ? एक अफ़सर से शादी हो गई, और वह अफ़सर भी रिजर्वेशन के बूते बना होगा, तो अपनी औकात भूल गई है ब्राह्मण से तुम–ताम करती है ?"**[34]

आज भी गाँव में दलितों को सम्मान देने में सवर्ण को शर्म आती है। वर्षों से शोषण करने वाले यह बर्दाश्त नहीं कर पाते, कि कोई दलित उनसे आगे प्रगति कर ले या ऊँचे ओहदे पर पहुँच जाए। अंजू चुप नहीं रहती, वह विवके जो कि एक लेखक भी है उससे कहती है–

> **"विवेक सिर्फ, पत्र–पत्रिकाओं में लिख देने से कुछ नहीं होता, अपने सगे भाई को तो नहीं बदल सके तुम ! बुद्धिजीवी, पढ़े–लिखे तुम्हारे तबके का यही तो चरित्र रहा है। काम निकालने के लिए खोल उतार कर पेश हो लिए, फिर काम हो जाने पर पुनः उसी खोल में चले गए ? अपना बाहर–भीतर दोनों, एक कर सको तो कभी फिर मेरे घर आना। फिलहाल, मैं चली।"**[35]

अंजू सवर्णों में आए स्वार्थ वश क्षणिक बदलाव से दुखी होती है। वह चाहती है, कि समाज तब सुधरेगा जब नई पीढ़ी के शिक्षित सवर्ण पहल करें, यदि ऐसा न हुआ तो उनके बीच की दूरियाँ कभी खत्म नहीं होंगी। अंजू जात–पांत के दंश को झेल चुकी है, इसलिए वह निर्णय लेती है, कि सतीश और रश्मि अन्तर्जातीय विवाह करना चाह रहे हैं, तो वह सही कर रहे हैं। बच्चों की खुशी के लिए वह समाज के हर बंधन को तोड़ने के लिए तैयार हो जाती है।

प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'अब का समय' वर्तमान समय में नई पीढी के दलित और सवर्ण समाज में आए बदलाव के साथ–साथ पंकज जैसे पात्र के माध्यम से यह भी चित्रित करने का प्रयास किया है, कि आज भी जाति–पांति का भेद पूरी तरह से खत्म होना बाकी है। सरकार इसके लिए प्रयास कर रही है, किन्तु दलितों को मिलने वाले आरक्षण से सवर्ण युवा पीढ़ी के अंर्तमान में कहीं –न–कहीं आक्रोश है। कहानी के संवादों से पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ प्रकट होती हैं, साथ ही कथानक को भी गति मिलती है।

2.2. दलित अशिक्षित महिलाएँ

1. 'सनातनी'– अमरस्नेह

प्रस्तुत कहानी की नायिका **चन्द्रो** एकं दलित स्त्री है। वह गाँव में सफाई का काम करती है, साथ ही गॉव की पाठशाला में भी सफाई का काम करती है। चन्द्रो का बेटा अनुआ है, जो छः सात वर्ष का है। उस गॉव में एक ही पाठशाला है। पण्डित दयाशंकर शर्मा इस पाठशाला को चलाते हैं। पण्डित जी को चारों वेदों का ज्ञान है। साथ ही संस्कृत, हिन्दी, गणित,इतिहास, ज्योतिषशास्त्र में पारंगत हैं। अंग्रेजी और फारसी का भी उन्हें अच्छा ज्ञान है। इस पाठाशाला में प्रवेश पान वाले विघार्थी को अच्छे मुहूर्त

दिखवाकर प्रवेश लिया जा सकता था। इस दिन छः सात वर्ष का एक बच्चा नई पोशाक और टोनी पहनकर लोगों के बीचों–बीच बड़ी शान से चल रहा था, ढोल बज रहे थे। ऐसे में चन्द्रो का बेटा अनुआ इस दृश्य को पहले दूर से देखता है, बाद में भीड़ में वह भी शामिल हो जाता है।

चन्द्रो अपने बेटे को सवर्णों के टोले में देखकर स्तब्ध रह जाती है, इस बीच उस विघार्थी का चाचा अनुआ को पहचान लेता है और छड़ी से उसे मारकर बाहर निकाल देता है। चन्द्रो भी अनुआ की पिटाई कर देती है। उस व्यक्ति ने चन्द्रो से कहा–

> **"अरी ओ सरम न आती तुम लोगों को किसी के धरम–करम की परवाह है कि न....बड़े दिन लग रह है... चल ले जा इसे।"**[36]

सवर्ण शिक्षा, ज्ञान, शास्त्रज्ञान आदि पर केवल और केवल अपना ही अधिकार समझते आए हैं। दलित इसे प्राप्त न कर सकें, इसलिए वे उन्हें पाठशाला से दूर रखते हैं। चन्द्रो अपने बेटे की जिज्ञासा को समझती है, किंतु वह चाहकर भी उसे पाठशाला में शिक्षा नहीं दे सकती। अनुआ चाहता है, कि वह भी नए कपड़े पहनकर पाठशाला में पढ़ने जाए। चन्द्रो बेटे की इच्छा की पूर्ती नहीं कर सकती, इसलिए रोने लगती है।

अनुआ पाठशाला में प्रवेश तो नहीं पा सका, किंतु पाठशाला की छुट्टी के बाद चन्द्रो वहाँ सफाई करने जाती है। अनुआ भी माँ के साथ उत्सुकता पूर्वक वहाँ जाता है। पाठशाला की एक–एक वस्तु को वह बड़े ध्यान से देखता है। अनुआ को पाठशाला में पढने न मिला तो क्या हुआ, वह पाठशाला के पिछले दरवाजे के फॉकर से गुरुजी की वाणी से शिक्षा प्राप्त करता है। गुरुजी इस बात से अनभिज्ञ रहते हैं। एक बार अनुआ पाठशाला से एक तस्वीर वाली किताब घर ले चलने को कहता है। चन्द्रो पहले इन्कार करती है, किंतु बेटा जिद्द करता है, तो अपने पल्लू में पुस्तक छिपा लेती है। गुरुजी ने उनकी बातें सुन ली। वे चन्द्रो और अनुआ को चोर समझते हैं। इस बीच चन्द्रो को अपनी गलती का ऐहसास हुआ, उसने अनुआ को प्रेम से दुलारते हुए पूछा–

> **"ये बता तन्ने पण्ड़ित जी की शिक्षा सुनी है कि वो न केत्ते हैं कि चोरी करना पाप होता है। हाँ ये मुझे याद क्यों न रया–चोरी करना पाप होता है असत्य बोलना पाप होता है असत्य का मतलब होता है झूठ। ला मां मैं ये किताब लेकर वहीं धर देता हूँ।"**[37]

चन्द्रो नहीं चाहती थी, कि उसका बेटा चोरी करे। अनुआ भी गुरुजी की दी गई शिक्षा को याद कर अपनी गलती को सुधार लेता है और भविष्य में कभी चोरी नहीं करेगा ऐसा वचन माँ को देता है। गुरुजी इस चर्चा को सुनकर चकित रह गए। आज उन्हें सत्य का साक्षात्कार हुआ था। जिस गंगा जल को वे चन्द्रो के जाने के बाद पाठशाला में छाँटते थे, उसी गंगा जल को उन्होंने आज अपने सर पर उड़ेल लिया। वे अपने अंतर–मन को पवित्र करना चाहते हैं। आज वे समझ गए थे, कि मानवता ही सबसे बड़ा धर्म है। यहाँ मनुष्य समान है केवल मन, विचार और धारणाएँ मलिन है।

गुरु पूर्णिमा के दिन अनुआ किसी के दिए हुए अच्छे कपड़े पहनकर गरुजी और बच्चों की टोली के पीछे–पीछे पूरे गाँव में घूमता है। एक धनी व्यक्ति के घर गुरुजी का आदर–सत्कार होता है। अनुआ को वहाँ देखकर वह लालाजी गुस्से में

पागल हो गया। पहले तो उसने अनुआ के कपडे फाड दिए, बाद में उसे लात मार दी। वह तड़पता रह गया। गुरुजी इस स्थिति को देखकर विचलित हो जाते हैं और उसे अपने वक्ष से लगाकर उसके आँसू पोछते हैं।

गुरुजी इस घटना और इसके जैसी अनेक घटनाओं के लिए स्वयं को दोषी मानते हैं। समाज के अमानवीय आचरण, समाज में व्याप्त रुढियों, असमानता, अत्याचार, जातिभेद के लिए हमारी शिक्षा ही जिम्मेदार है। गुरुजी ने अपने आप को अपराधी पाकर मौन व्रत धारण कर लिया और साथ ही अन्न–जल त्यागकर प्रायश्चित करने लगे। गाँव एवं शहर के सभी बड़े अधिकारी उनके पास आकर उनका व्रत तोड़ने की बात कहते हैं, किंतु गुरुजी नहीं मानते। गाँव और शहर के सभी लोगों का प्रयास निष्फल जाता है। अंत में अनुआ साहस करके गुरुजी से मिलने जाता है और एक कागज पर कुछ लिखकर गुरुजी को देता है, जिसमें लिखा होता है–

> **"परम पूज्य गुरुजी, मैं जीवन में पहली बार हाथ में कागज पेंसिल पकड़ रहा हूँ, गलती क्षमा करना। मेरी प्रार्थना है कि आप मौन व्रत तोड़ दें भोजन और जल ग्रहण करें। यदि आपने ऐसा नहीं किया तो ये शिष्य अपने परिवार सहित अन्न–जल का त्यागकर अपने प्राणों को त्याग देगा। आपका शिष्य।"**[38]

अनुआ एक सच्चा शिष्य था। गुरुजी की तकलीफ उससे देखी नहीं जाती। उसे पढ़ना–लिखना आता है, यह बात उसने सबसे छिपाई थी, किंतु गुरुजी के प्राणों को संकट में देखकर वह इस बात को सबके सामने प्रकट कर देता है। वह एकलव्य की भाँति गुरुजी से शिक्षा प्राप्त करता है। वह एक से आठवीं तक की शिक्षा एक साथ पा गया था। गुरुजी अनुआ की प्रतिभा को देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। अनुआ की माँ अपने बेटे के इस रुप को पहली बार देखकर खुशी से इतना रोती है, कि उसका पल्लू भीग जाता है। चन्द्रो ने कल्पना नहीं की थी, कि उसका बेटा गरीबी, अभाव में रहते हुए भी इतना ज्ञान पा सकेगा। आज उसके बेटे ने उसका सिर गर्व से ऊँचा कर दिया था।

अनुआ गुरुजी को व्रत तोड़ने के लिए विवश कर देता है। गुरुजी अनुआ के तर्क के आगे नतमस्त हो जाते हैं। वे अनुआ के हाथों से शर्बत पीकर अपना व्रत तोड़ते हैं।

2. 'कर्फ्यू'– अखिलेश कुमार

अखिलेश कुमार द्वारा रचित **'कर्फ्यू'** कहानी में दैनिक मजदूरी करके गुजर–बसर करने वाले बुधना, उसकी पत्नी गुजरी और पाँच बच्चों के दयनीय जीवन को चित्रित किया गया है। शराब पीना बुधना की आदत है। यह शराब उसके दिन भर की मजदूरी की थकान के साथ–साथ विवाह योग्य होती पुत्री फुलिया की चिंता से उसे थोड़े समय के लिए मुक्त करती थी। उसकी चिंता उन लोगों को देखकर बढ़ जाती थी, जो उसके मोहल्ले में फुलिया को देखकर उसकी चर्चा करते थे। अधेड़वय का रसिक नामक व्यक्ति उनमें से एक था। दो बच्चों का पिता रसिक फुलिया जैसी नवयुवतियों को अपने जाल में फँसाता था, क्योंकि वे गरीब रहतीं थीं। उनकी आवश्यकताओं एवं मजबूरी को रसिक जानता था, इसलिए मौके की तलाश में हमेशा रहता था।

शहर में कर्फ्यू लगता है। घर में एक ही दिन के अनाज में आठ दिन निकल जाते हैं। चार छोटे बच्चे और एक फुलिया एवं पति की भूख एवं शराब की पूर्ति के लिए गुजरी घर से निकलती है, जब आठ दिन बाद कर्फ्यू में एक घंटे की छूट मिलती है। दंगाई गुजरी को एकांत में पाकर बलात्कारी बन जाते हैं, यह चेहरे गुजरी पहचान जाती है इसलिए वे गुजरी की हत्या कर देते हैं। माँ की मृत्यु से बच्चे और दुःखी होते हैं, किन्तु इससे उनकी भूख तो नहीं मरती। छोटे भाई बहनों एवं पिता की लाचारी देखकर फुलिया रसिक के समक्ष जाकर समर्पण कर देती है और कहती है–

> **"कई दिनों से भाई–बहन खाना नहीं खाए हैं, बापू को दारु नहीं मिला है।"**[39]

कर्फ्यू सबसे ज्यादा घातक दैनिक मजदूरी कमाने वालों के लिए होता है। बुधना जैसे लोग रोज कमाते हैं और खाते हैं। ऐसे समय में उनकी जमा पूँजी के अभाव में उनकी परिस्थिति बुधना के परिवार जैसी हो जाती है और उनकी परिस्थिति का लाभ रसिक जैसे लंपट व्यक्ति उठाते हैं। फुलिया का यह आत्मसमर्पण अपने छोटे–बहनों एवं पिता की पेट की भूख के लिए होता है। बड़ी–बड़ी बातें, सिद्धान्त, ऊँचे विचारों से बच्चों की बुनियादी समस्या भूख को खत्म नहीं किया जा सकता। फुलिया अपने शरीर को बेचकर घर की बड़ी बेटी होने का फर्ज़ निभाती है। प्रश्न यह है कि क्या इसके अतिरिक्त उसके पास कोई दूसरा रास्ता संभव था ?

3. 'खटिया की जाति'– सुरेन्द्र नायक

प्रस्तुत कहानी **'खटिया की जाति'** शिक्षण संस्थान में होने वाले वर्ण संबंधी भेद–भाव एवं दलित युवती **शिप्रा** के जातीय शोषण को प्रस्तुत करती है। कहानी का नायक विशाल दलित युवक है। ग्यारहवीं कक्षा में होस्टल में अपनी ही जाति के एक सहपाठी के साथ रहता है। उसके होस्टेल में सामंतकालीन वर्णीय व्यवस्था आज भी व्याप्त है। आधुनिक युग के समय में ऊँची जाति के लड़कों के कमरे एक ओर एवं नीची जाति के लड़कों के दूसरी ओर हैं। बचपन से ही विशाल यह भेद–भाव देखता आया है, किन्तु उच्च शिक्षण संस्थानों में ऐसी उम्मीद उसे नहीं थी।

होस्टेल के सफाई कर्मचारी कल्लू की पुत्री शिप्रा का संबंध वार्डन के पुत्र सोमेश से होता है। शिप्रा अत्यंत सुंदर युवती थी। जो उसे देखता, उसकी पलकें झपकाने की इच्छा न होती। ऐसी सुंदरी का सामीप्य पाकर सोमेश उससे विवाह करने का वादा करता है और उसका शारीरिक शोषण करता है। सोमेश का यह प्रेम वास्तव में एक छल था। सवर्ण सोमेश शिप्रा के शरीर को पाना चाहता था। जिस खटिया पर रात को वह शिप्रा के साथ सोया था, उसे सुबह होते ही धोने लगता है। विशाल जब अपने सीनियर सोमेश से पूछता है कि–

> **"सर आप चारपाई धो रहे हैं ? खटिया को छूत लग गयी है। धोक गंगाजल छिडकूंगा।" सोमेश ने झटके से कहा। विशाल सब कुछ समझकर भी अनजान बन गया–"खटिया तो निर्जीव है, उसकी कैसी जाति, कैसी छूत ? फिर आप तो बामन हैं, उस पर वार्डन पुत्र आपकी सहमति के बिना किसी दलित की उस पर बैठने की हिम्मत कहाँ ?"**[40]

शिप्रा से शारीरिक संबंध बनाने से सोमेश को स्वयं छूत नहीं लगती बल्कि निर्जीव वस्तु को छूत लग जाति है। अपने ब्राह्मण होने पर उसे घमंड है, दलित युवती का शरीर उसे पसंद है, लेकिन यह उसकी भूख है। अपने आनंद और मनबहलाव के लिए वह शिप्रा को अपने नजदीक आने की अनुमति देता है, परंतु अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर ब्राह्मणी राक्षस उस पर हावी हो जाता है।

शिप्रा गर्भवती है, यह जानकर छात्रावास के प्रिंसिपल एवं वार्डन की शंका होस्टेल के विद्यार्थियों पर जाती है। विशाल और उसके साथियों को डर था, कि दलित होने के कारण दलित युवती से संबंध अवश्य ही दलित युवक ने बनाए होंगे यह सोचकर प्रिंसिपल एवं वोर्डन उन पर आरोप लगा सकते हैं। अधिकतर दलित युवक होस्टेल छोड़कर भागना चाहते हैं, किन्तु विशाल के समझाने पर कि जब अपराध ही नहीं किया तो डरना क्यों ? विशाल सारी सच्चाई जानता था। उसे विश्वास था, कि अवश्य उस पर ही यह आरोप लगाया जाएगा, वह मानसिक रुप से तैयार था। दारोगा जब उसे पकडने आता है, तब विशाल निडरता से उससे अपने निर्दोष होने की बात कहता है। दोषी कौन है ? यह शिप्रा बतला सकती है, किंतु अपने अन्नदाता के सामने उसी के पुत्र का नाम वह कैसे लेती। यदि वह नाम बताती है, तो कोई उस पर विश्वास नहीं करेगा, कि एक ब्राह्मण एक मेहतरानी के साथ शारीरिक संबंध बना सकता है। यदि वह चुप रहती है, तो निर्दोष विशाल फँसता है। शिप्रा रोते जा रही थी। सारे विद्यार्थी, वोर्डन, प्रिंसिपल, दारोगा सभी सच्चाई जानना चाह रहे थे।

विशाल जानता था, कि शिप्रा क्यों चुप है। वह शिप्रा की धार्मिक भावनाओं को हवा देते हुए कहता है, कि यदि कोई हॉस्टेलर जिम्मेदार है तो हाँ कहो। शिप्रा ना में सिर हिलाती है। गुलामी के सदियों पुराने संस्कार एक पल में नहीं मिट सकते। शिप्रा स्वयं अपमानित हो रही थी, किन्तु नाम बताने से डर रही थी। अंत में विशाल ही सारी सच्चाई सभी के समक्ष रखता है। वह प्रिंसिपल से निर्भीगता से कहता है–

> **"प्रिंसिपल साहब ! अपराधी बामन जाति की खटिया है जिसको धुलकर गंगाजल से पवित्र होते हुए बहुत से छात्रों ने देखा है।"**[41]

विशाल की खटिया धोने की बात से सभी विद्यार्थी जान जाते हैं, कि दोषी सोमेश है। शिप्रा स्वयं भी सभी के समक्ष सोमेश के दोषी होने की बात को रवीकारती है।

दो प्रेमियों के बीच का प्रेम यदि कमरे के अंदर होता है, तो उसे प्रेम कहते है और यदि वह सबके सामने आ जाता है तो वह अपराध बन जाता है। दलित शिप्रा सोमेश की प्रेममूर्ण बातों में आकर उससे विवाह के सपने देखने लगती है, किन्तु उसका यह प्रेम, अपराध बन जाता है, जिसके कारण उसे सबके बीच लज्जित होना पड़ता है। जबकि वास्तविक दोषी सोमेश भाग जाता है, उसे अकेला छोड़कर।

कहानी का शीर्षक 'खटिया की जाति' सांकेतिक शीर्षक है। विशाल स्वयं दलित है, इसलिए वह शिप्रा की पीडा एव दुविधा को समझता है एवं उस पर झूठा आरोप लगने पर भी, वह शिप्रा के मुँह से सच्चाई उगलवाने का सफल प्रयास करता है। ऐसा वह इसलिए करता है, क्योंकि सभी के समक्ष यह बात स्पष्ट हो जाए कि दलित ही गलत हों यह ज़रुरी नहीं, ब्राह्मण होकर भी दलित युवती से संबध रखे जाते हैं। ऊपरी तौर पर छुआछूत दिखाने वाले अंतर में कितने स्वार्थी होते हैं। कहानी की भाषा चित्रोपम है एवं पात्रों के अनुरुप है। संवाद छोटे और कथानक को गति प्रदान करने वाले हैं।

4. 'फुलवा'– रत्न कुमार सांभरिया

रत्न कुमार सांभरिया की प्रस्तुत कहानी दलित शिक्षित परिवार में आए बदलाव की कहानी है। आज दलित बच्चे शिक्षा प्राप्त करके ऊँचे पद पर नौकरी कर रहे हैं, इसलिए पुरानी पीढ़ी के लोग उन सुखों को भोग कर रहे हैं, जिसकी उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी। फुलवा भी उन्हीं लोगों में से है। गाँव की दलित स्त्री फुलवा का पति जमींदार के बिगडेल बैल की मार से मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। दस वर्ष के पुत्र राधामोहन को अच्छी शिक्षा देने के लिए फुलवा जमींदार के घर पर नौकरानी का काम करती है। आज उसका बेटा एस. पी. बन गया है। शहर में बड़ी सी हवेली और उसमें सुख–समृद्धी के सारे सामान मौजूद हैं।

आज अधिकतर गाँवों में जमींदारी प्रथा जाती रही है। सवर्ण जमींदारों की स्थिति पहले जैसी नहीं रही। उनके बच्चे जब उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं करते, तो भला अच्छी नौकरी कैसे मिल सकती है। जहाँ एक ओर दलित परिवारों की दिन–प्रतिदिन प्रगति हो रही है, वहाँ दूसरी और सवर्ण अपने झूठे अहंकार, दंभ, अस्पृश्यता आदि रीति–रिवाजों के कारण अधोगति की ओर जा रहे हैं। ऐसी ही स्थिति फुलवा के गाँव के जमींदार की हो गई है। उसका बेटा मैट्रिक पास है, वह पिता भी बन गया है, किन्तु नौकरी अभी तक नहीं मिल पाई है। यह जमींदार रामेश्वर है, जिसके घर फुलवा वर्षों पहले काम किया करती थी। समय बड़ा बलवान है। रामेश्वर दलित फुलवा या उसके बेटे से कोई मदद माँगना नहीं चाहता, क्योंकि इसमें उसके अहंकार को ठेस पहुँचती है।

रामेश्वर जब दलित फुलवा के ठाट–बाट, सुख–सुविधा को देखता है, तो हैरत से दंग रह जाता है, वह प्यास लगने पर भी फुलवा के घर का पानी तक नहीं पीता क्योंकि इससे उसका घर्म भ्रष्ट हो जाता। रामेश्वर मदद के लिए जिस ब्राह्मण परिवार के पास जाता है, उसकी दरिद्रता देखकर उसे बहुत आश्चर्य होता है। एक ओर दलित फुलवा आनंद से महल जैसे घर में रह रही है, तो दूसरी ओर ब्राह्मण परिवार बहुत ही छोटे झोंपडी जैसे घर में रहने के लिए विवश था। उनकी हालत देखकर रामेश्वर की आँखें विस्मय से फैल गई थीं।

जाति–भेद को मानने वाला रामेश्वर फुलवा के आदर–सत्कार को ठुकराकर गरीब ब्राह्मण परिवार के पास मदद माँगने आता है। उसकी इच्छा होने से फुलवा स्वयं पंडिताइन के घर रामेश्वर को छोड़ने आती है। फुलवा के चले जाने पर रामेश्वर पंडिताइन से अपने बेटे की नौकरी की बात करता है, और कहता है–

> **"दादी–फुलवा चाहे सोने की हो जाए, रहेगी उसी जात की। मैंनें तो उसके घर का पानी तक नहीं पिया। धर्म भ्रष्ट होने से मर जाना अच्छा समझता है रामेश्वर।"**[42]

हमारे देश में भले ही जितना विकास हो रहा हो, बदलाव आ रहे हों किन्तु आज भी जातिगत भेद–भाव पूर्णरुप से मौजूद हैं। रामेश्वर उच्च वर्ण का होने के कारण दलित फुलवा या उसके बेटे से मदद नहीं लेना चाहता। मन–ही–मन वह फुलवा की प्रगति पर चिढ़ता है, क्योंकि वह तो फुलवा को दरिद्र दशा में ही देखने का आदि था। उसकी सोच थी कि यदि वह धनवान नहीं रहा तो क्या हुआ, उच्च वर्ण का होना आज भी उसके लिए सम्मान का एक मजबूत कारण था।

पंडिताइन पुरानी विचार–धाराओं या कहें कि जातिभेद को छोड़ चुकी है। शहर में आकर उसने देख लिया है, कि यहाँ छुआछूत गाँव की तरह नहीं है। यहाँ उसका बोलबाला है, जिसके पास नाम, और धन है। फुलवा की बहू पढ़ी–लिखी थी। उसी के कारण पंडिताइन के बेटे को नौकरी मिली थी। वह रामेश्वर के विचार को सुनकर उसे डपटते हुए कहती है–

> **"तू तो कुएँ का मेढ़क ही रहा रामेसरिया। अब तो पद और पैसे का ज़माना है, जात–पात का नहीं। फुलवन्ती का राधामोहन कोई छोटा–मोटा अफसर नहीं है। एस. पी. है, एस. पी.। एक बात बताऊँ तुझे जाकर मेम साहब के पाँव पकड़ ले और तब तक मत छोड़ना जब तक वह हाँ न कह दे। पंडिताइन ने एक ठण्डी साँस ली चरण छुओ बहूरानी के। मेरे बेटे को तो उसी ने दूसरी ज़िन्दगी दी है।"**[43]

पण्डिताइन ने परिस्थिति और समय के अनुकूल अपने को ढ़ाल लिया था। रामेश्वर को भी वह यही समझाती है, कि यदि अपना भला चाहते हो, तो यह भेद–भाव छोड़ दो। रामेश्वर के लिए ऐसा करना सरल न था। पंडिताइन के ये शब्द रामेश्वर के शरीर में तेजाब उँड़ेलने जैसे लग रहे थे। फुलवा की बहू को वह द्रौपदी–सा बेआबैरु करना चाह रहा था, उसी के पाँव पकड़ने की बात पंडिताइन कर रही थी। जाति–भेद को मिटाना उसके लिए बहुत मुश्किल हो रहा था।

पंड़िताइन रामेश्वर को गैरेज में सोने के लिए बिस्तर लगा देती हैं जहाँ बकरी और बीमार कुत्ता भी था। बदबूदार वातावरण और कुत्ते की खाँसी से रामेश्वर पूरी रात सो नहीं पाता। उसे मितली आने लगती है। अनायास सुबह फुलवा की कोठी की ओर बढ़ने लगता है।

फुलवा के प्रेम से किए गए अतिथि सत्कार को ठुकराकर, रामेश्वर ब्राह्मण परिवार के पास जाता है। दोनों के बीच के अंतर को वह कुछ घंटों में ही समझ जाता है। अंत में वह फुलवा का अतिथि बनना स्वीकार कर लेता है। प्रस्तुत कहानी दलितों की स्थिति और सवर्णों में आए बदलाव को प्रस्तुत करती है। कहानीकार ने बड़ी सरल भाषा में अपनी बात प्रस्तुत की है। आज ज़रुरत है समानता की, ऊँच–नीच के भेद–भाव को मिटाने की। पुराने विचारों को छोडकर नए विचारों को अपनाने की। कोई भी व्यक्ति अपनी जाति से ऊँचा या नीचा नहीं होता। वह तो अपने कार्य से अपना स्थान बना सकता है। अपने परिश्रम के बल पर दलित युवक आज उच्च पद को प्राप्त कर रहे है। सवर्ण समाज को चाहिए कि वह उनका सम्मान करे, न कि उन्हें अपमानित करे। समय उसी के साथ रहता है, जो परिश्रम करता है, सत्य के मार्ग पर चलता है।

5. 'हरिजन'–प्रेम कपड़िया

प्रस्तुत कहानी मध्यप्रदेश के इटारसी में मंदिरों में देवदासी प्रथा और पुजारियों के उस रुप को हमारे समक्ष लाती है, जिससे आम लोग अनभिज्ञ हैं। कथानायक की माँ परबतिया एक हरिजन औरत थी। गरीबी, भुखमरी, लाचारी वश वह गाँव के मंदिरों में प्रसाद की लालच में जाया करती थी। वहाँ के मंदिर के पुजारी दलित स्त्रियों को रात के समय अपने शयनकक्ष में बुलाकर अपनी काम–वासना की पूर्ति करते

थे और बदले में उस स्त्री को थोड़ा–सा प्रसाद दे देते थे। परबतिया भी उन्हीं स्त्रियों में से एक थी। उसका एक पुत्र होता है प्रेमा।

परबतिया स्वयं दयनीय परिस्थितियों में से गुजर रही थी, किन्तु वह नहीं चाहती थी, कि उसके बेटे के भविष्य में दुःख का अंधेरा हो। इसलिए वह उसे शिक्षित बनाना चाहती थी। एक रात प्रसाद देने के लिए वह अपने आठ वर्ष के पुत्र को मंदिर में रात के समय छुपाकर ले जाती है। उसे प्रसाद देकर तख़्त के नीचे छिपा देती है। पुजारी जब अपनी वासनापूर्ति के लिए उसके पास आता है, तब वह कहता है–

"परबतिया ! तू आज सुबह ही जाना....।"
"नहीं महाराज ! मेरा बच्चा भी है। वह अकेला नहीं रह सकता"
उसने माँ की आवाज़ सुनी थी।
"अरे ! उसे किसी अनाथाश्रम में छोड़ आ ना।"
नहीं महाराज ! वह पढ़ने का बड़ा शौकीन है... मैं तो पाँवों की धूल ही रही.....मैं उसे कुछ बनाना चाहती हूँ।
"अरे परबतिया ! कहीं राख में फूल खिलते हैं भला ? वह हरिजन है.. हरिजन कैसे पढ़ सकता है ? हमारे वेदों में हरिजनों को वेद–पुराण सुनने की भी मनाही है... पढ़ने की बात तो दूर रही। खैर ! छोड़ अलमारी में सोमरस की शीशी है.... उसे निकाल ले और गिलास में डाल दे.....तब तक मैं कपड़े उतारता हूँ।"[44]

एक दलित स्त्री अपना शरीर बेचकर भी अपने पुत्र को शिक्षित बनाना चाहती है, जबकि एक शिक्षित पुजारी उसे शिक्षा से वंचित रखना चाहता है। परबतिया कितनी विवश है, कि अपने पुत्र को न तो अंधेरे में अकेला छोड़ सकती है और न ही पुजारी के समक्ष विरोध प्रकट कर सकती है। किसी भी माँ के लिए पुत्र की उपस्थिति में अपना शरीर बेचना कितना कष्टकर होगा?

प्रस्तुत कहानी फ्लेश–बेक में कही गई है। परबतिया का पुत्र प्रेम घर से भागकर एक अधिकारी के घर शरण पाता है, वहाँ अच्छी शिक्षा प्राप्त कर डेपुटेशन पर एस. एस. पी. बन जाता है। वह अपने गाँव तबादला लेकर आता है उसे अपने बचपन की याद आती है जब की वह आठ वर्ष का था। एक सवर्ण बच्चे ने उसकी तख्ती पर पैर रख दिया था। जब प्रेम ने विरोध किया तो वह कहने लगा–

"पैर पड़ गया तो क्या होगा ? तू हरिजन है ही... फिर हरामी भी है...तेरे बाप का नाम क्या है ? क्या तू जानता है ?"[45]

ऐसे कड़वे शब्दों ने आठवर्षीय प्रेम के बालमानस को कितनी चोट पहुचाई होगी ? शायद इसीलिए वह उसे लड़के को वही तख्ती सिर पर मारकर भाग जाता है। मंदिरों में देवदासियों से जो पुजारियों की संताने जन्म लेती हैं, ऐसी संतानों का क्या भविष्य है ? समाज में उन्हें कैसी दृष्टि से देखा जाता है ? आखिर उन बच्चों का इसमें क्या दोष है, ऐसे कई प्रश्न इस कहानी में उठते हैं।

जिस सवर्ण अधिकारी ने प्रेम की प्रतिभा को पहचानकर उसे लक्ष्य तक पहुँचने में मदद की थी, वही अधिकारी अपनी पुत्री का विवाह प्रेम से करके अपने आपको आधुनिक सिद्ध करता है। प्रेम की पत्नी भी प्रेम के विषय में सारी सच्चाई जानकर भी उसका साथ देती है।

तीस वर्ष बाद प्रेम एक पुलिस अधिकारी बनकर अपने गॉव लौटता है। उसे वहाँ भेजने के पीछे प्रेम के ससुर जो कि होम सेक्रेटरी थे, उनका मकसद कुछ ऐसा था--

> **"मेरा तुम्हें वहाँ भिजवाने के पीछे एक मक़सद है। मध्यप्रदेश के तमाम बड़े मंदिरों में आज भी देवदासियाँ बनाई जा रही है... व्यवस्था और शासन सभी लोग इन गरीब हरिजन महिलाओं का शोषण करते हैं..... देवदासियों की ज़िन्दगी से तुम परिचित हो... मैं चाहता हूँ तुम वहाँ जाकर इस देवदासी प्रथा का सफया कर दो।"**[46]

देवदासी--प्रथा हमारे समाज की घृणास्पद प्रथा होते हुए भी, हमारे समाज में आज भी देखी जा सकती है। ज़रुरत है कि देश के शिक्षित लोग स्वयं ऐसे मंदिरों में देवदासी--प्रथा की सच्चाई जानकर उसका विरोध करें और उसे जड़ से नाबूद कर दें। गरीब हरिजन स्त्रियों को दिन के उजाले में अछूत कहकर दूर रहने वाले पुजारी रात के अंधेरे में उनके साथ मुँह काला करते हैं। ऐसे पुजारियों को कडी--से--कड़ी सज़ा दिलानी चाहिए, ताकि अन्य लोगों को इससे सीख मिले।

प्रेम अपनी सिपाही टुकड़ी के साथ उस मंदिर पर छापा मारता है, जहाँ उसकी माँ देवदासी हुआ करती थी। वहाँ के कई पुजारी और देवदासियों को थाने में ले जाया जाता है। तीस वर्ष बाद वह एक पुलिस अधिकारी बनकर अपनी माँ के समक्ष अपना परिचय देता है, कि मैं तेरा पुत्र प्रेम हूँ। प्रेम सम्मान के साथ अपनी मॉ को अपने घर ले जाता है। परबतिया का सपना साकार हो गया, उसके पुत्र ने वह कर दिखलाया, जिसकी वह कल्पना ही किया करती थी।

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में देवदासी--प्रथा में दलित स्त्रियों और उनसे जन्मीं संतानों की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। फ्लेश--बेक में कही गई इस कहानी में, कहानीकार ने बड़ी खूबी से 30 वर्ष के अंतराल के बाद भी यह कु--प्रथा जारी है, इसकी ओर संकेत किया है। हमारी कानून व्यवस्था और शासन सभी इस कु--प्रथा का हिस्सा बन रहे हैं, ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उठता है, कि फिर इन दलित स्त्रियों की रक्षा कौन करेगा ? क्योंकि हर परबतिया का प्रेम पुलिस अधिकारी नहीं बन पाता है। भोजन, शिक्षा, प्रेम और अच्छे वातावरण के अभाव में ऐसे बच्चे अकसर गलत रास्ते अपना लेते हैं। आखिर इसके लिए कौन जिम्मेदार है ? ऐसे कई प्रश्न इस कहानी से उठते हैं।

6. 'उपमहाद्वीप'--अजय नावरिया

प्रस्तुत कहानी **'उपमहाद्वीप'** अजय नावरिया द्वारा रचित है। कथानायक **सिद्धार्थ** स्वयं एक शिक्षित दलित पुरुष है। वह एक सरकारी संस्थान में मैनेजर है। उसकी पत्नी कॉलेज में लेक्चरार है। अपनी एक पुत्री के साथ सुसज्ज घर में रहने वाला सिद्धार्थ जिस ऑफिस में कार्यरत था, वहाँ वह ऊँचे ओहदे पर कार्यरत था। उसी ऑफिस में चौथी श्रेणी के कर्मचारियों से जातिगत भेद--भाव रखा जाता था। साथ ही उन्हें कोटे का कहकर अपमानित किया जाता था। स्वयं सिद्धार्थ के एसिस्टेंट उसे विश नहीं करते थे। वह सोचता है--

> **"क्यों अक्सर कर्दम और पासवान मेरे पास आते हैं ? क्यों वे मुझे अपना दुखड़ा सुनाते हैं ? क्यों मैं अकेला ऐसा अधिकारी हूँ ? क्यों एसिस्टेट**

पासवान मेरे चपरासी छेदी खटीक के नहीं होने पर मेरा चाय का कप पकड़ने में हिचकता नहीं है ? क्यों गुप्ता और दूसरे दो–एक लोग ऑफिस में मेरे आने पर मुझे विश नहीं करते ? क्यों मेरे डिप्टी थपलियाल का हर काम यह दौड़–कर करते हैं ? क्यों.....क्यों....क्यों हम अलग हैं ? इनसे अलग ? मुसलमानों की तरह ? ईसाइयों की तरह ? अखेतों की तरह ? इनके परिचय क्षेत्र से बाहर अजनबी ? मलेच्छ ? नीच ? अछूत ?''[47]

शहर में भी आज के समय में दलितों के साथ अस्पृश्यता पूर्ण व्यवहार किया जाता है। ऐसे में वे मानसिक तनाव का अनुभव करते हैं। इसी तनाव में उसे अपने बचपन की कुछ घटनाएँ याद आती हैं। उसके पिता शहर में नौकरी करते थे, मॉ दादाजी के साथ गाँव में रहती थीं। गाँव में दलितों को अच्छे कपड़े पहनने, अच्छा खाने–पीने, खुश रहने, शिक्षा पाने एवं दुल्हे को घोड़े पर चढ़कर बारात निकालने की स्वतंत्रता सवर्णों ने नहीं दी थी। सवर्ण ने दलितों के दिमाग में ऐसा अंधविश्वास फैलाया था, कि वे उनके खिलाफ बगावत न कर सकें। एक दूल्हा घोड़ी पर बैठ गया तो सवर्ण उसके पिता को गंदी गालियाँ देते हुए कहता है–

''अबे नीच, धरम–ईमान का नाश करने पर तुला है। तेरी बिरादरी ने नहीं समझाई तुझे यह बात। तू हैजा–प्लेग फैलाएगा गाँव में। सूखा पड़ेगा देख लेना इस बार। गाँव की परंपरा तोडी है हज़ारों साल की इसने। इसका पातक लगेगा गाँव को। गूज़रों के गाँव में यह अधरम। कलजुग है कलजुग।''[48]

सदियों से अनपढ़, अज्ञानी दलितों को धर्म के ठेकेदार अपने स्वार्थ एवं ईच्छानुसार संचालित करते आए हैं। सवर्णों ने दलितों को लाठियों से पीटा और उनके घर की स्त्रियों पर बलात्कार किया। पुलिस भी उसी का पक्ष लेती है, जिसके पास सत्ता होती है। ऐसे वातावरण में सिद्धार्थ की माँ अपने छोटे से परिवार के साथ दुःख झेलते हुए भी संतोष प्राप्त करती है। शहर से आए पति एवं पुत्र सिद्धार्थ जब गाँव में नए कपड़े पहनकर घूमने निकलते हैं, तो सवर्णों को यह बर्दाश्त नहीं होता। वे तो फटे, पुराने, चिथड़ो में ही दलितों को देखकर प्रसन्न होते हैं। उनसे अधिक अच्छे कंपड़े में वे सपने में भी दलितों को नहीं देख सकते। पिता–पुत्र को अपमानित करके इतना पीटा जाता है, कि उनके नए कपडे फट जाते हैं और उनके खून से लथ–पथ हो जाते हैं। उन्हें बचाने वाला कोई नहीं था। सिद्धार्थ की माँ उन्हें बचाने आती है, तो वे उसे भद्दी गालियां देकर उसका भी अपमान करते हैं, धर्म का भय दिखाते हैं। माँ बार–बार ज़मीन पर सिर झुकाकर अपने पति और पुत्र के प्राणों की भीख माँगती है, किन्तु वे अपनी जूतियों से सिर पर मारते हैं। माँ मिन्नतें करती रहती है, किन्तु किसी का हृदय नहीं पिघलता। दंड में जितने रुपये मिल गए उन्होंने ले लिए और माँ को एक ओर अपमानजनक दंड देकर ही उन्हें चैन मिला। मॉ से कहा गया कि पुत्र और पति की जान प्यारी है, तो थूककर चाटो। निःसहाय माँ की विवशता यह थी कि ऐसा करने के अतिरिक्त वह कुछ नहीं कर सकती थी। माँ से घिनौना कार्य करवाकर उनकी आत्मा को तृप्ति मिलती है।

यहाँ माँ की स्थिति को कहानीकार ने बड़ी दयनीय बताया है। गाँव की भोली–भाली, परिश्रमी माँ सदैव सवर्णों का आदर करती थी, उनसे भयभीत रहती थी,

क्योंकि वह उनके आतंक को देख चुकी थी। पति और पुत्र शहर के खुले वातावरण से आए थे, इसलिए उनके आतंक को भूल गए थे। माँ के समक्ष एक ही मार्ग था, कि चाहे कितना भी अपमान रहना पड़े सह ले किन्तु पति एवं पुत्र की जान बच जाए। एक दलित स्त्री होने के कारण गाँव के सवर्ण उसे मिलकर अपमानित करते हैं।

प्रस्तुत कहानी फ्लेश–बैक पद्धति में लिखी गई है। वर्षों पहले और आज गाँव और शहर सभी में दलितों पर अत्याचार होता दिखाया गया है। समय एवं परिस्थिति के अनुसार शोषण का ढ़ंग अवश्य बदला है, किन्तु शोषण खत्म नहीं हुआ। कहानी में खड़ी बोली के साथ–साथ आँचलिक शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

7.'आधा सेर घी'–मोहनदास नैमिशराय

'आधा सेर घी' मोहनदास नैमिशराय द्वारा रचित कहानी है। गरीब दलित **बलवन्ता** और उसकी पत्नी **सुमति** एक सपना देखते हैं, कि उसका बेटा पढ़–लिखकर डिप्टी कलेक्टर बनेगा। इस सपने को साकार करने के लिए बलवंता खूब परिश्रम करता है और बेटे को एम.ए. की पड़ाई के लिए होस्टल में पढ़ने भेजता है। बेटा धन्नालाल भी माता–पिता के सपने को पूरा करने का संकल्प लेता है। गाँव में बलवंता के सपने को लेकर लोग उसका मजाक उडाने लगते हैं, क्योंकि एक दलित का बेटा कलेक्टर कैसे बन सकता है ? दलित तो उस गाँव में सवर्णों की सेवा करने के लिए बने हैं। यदि वे कलेक्टर बनने लगे तो सवर्ण किसका शोषण करेंगे ? किससे अपनी गुलामी करवाएँगे ?

बलवंता बेटे को कलेक्टर बनाने की धुन में अपनी जमीन, घर सब–कुछ गँवा देता है, किन्तु उसकी आशा जीवित रहती है। बेटे को कलेक्टर बनते वह नहीं देख पाता और समय पर दवाईयाँ एवं इलाज न मिलने से उसकी मृत्यु हो जाती है। सुमति अपने पति की अंतिम ईच्छा पूरी करने के लिए धन्नालाल का मनोबल बढाती है। बेटा माँ की तकलीफों को समझता है और अधिक परिश्रम करके उनका सपना पूरा करना चाहता है।

धन्नालाल जिस परिवेश एवं गॉव में रहता था, वहॉ गरीब दलितों को दो वक्त का रुखा–सूखा भोजन मिलना मुश्किल था। धन्नालाल की तीव्र ईच्छा होती थी, कि वह मिस्सी रोटी घी लगाकर खाए। किन्तु चाहकर भी सुमति बेटे की इस छोटी–सी ईच्छा की पूर्ति नहीं कर पाती। हमारे देश में आज भी इतनी गरीबी है, कि कितने ही लोग भरपेट भोजन कभी नहीं जुटा पाते और यह उनका सपना बन जाता है कि उन्हें भरपेट भोजन कब मिलेगा ?

सुमति बड़ी मुश्किल से 'आधा सेर घी' जुटाकर बेटे को संदेशा भिजवाती है, कि उसके लिए घी रखा है आकर ले जाए। धन्नालाल की खुशी का ठिकाना नहीं था। आज वही पेटभर कर भोजन करेगा। यह सोचकर वह कोलेज से घर की ओर चल देता है। धन्नालाल घर पहुँचे उससे पहली ही बनिया अपनी ऊधारी के रुपये न मिलने पर सुमति के रखे आधा सेर घी को उठाकर जबरन ले जाता है।

यहॉ गरीब अशिक्षित सुमति अपने एक मात्र पुत्र के लिए 'आधा सेर घी' बनाकर रखती है। यहाँ 'आधा सेर घी' मात्र कोई खाने की वस्तु नहीं है बल्कि गरीब दलितों के लिए वह एक सपने की तरह है। गरीब सुमति, धन्नालाल और बलवंता जैसे दलितों के लिए लेखक ने उचित ही कहा है–

"मन्दा जमाना था। पर उतना मन्दा तो न था। गरीब के लिए तो हर युग महँगा रहा है। उसके लिए भी यह महँगा युग था, क्योंकि उसने अपने बलबूते से बाहर की बात पूरी करने की ठान ली थी।"[49]

8.'कर्ज'—मोहनदास नैमिशराय

'कर्ज़' कहानी मोहनदास नैमिशराय द्वारा रचित कहानी है। जिसमें दलितों का शोषण सेठ–साहूकार किस तरह पीढ़ी–दर–पीढ़ी करते आए हैं, उसे प्रस्तुत किया गया है। कहानी में दलित नारी **रामप्यारी** चालीस वर्ष की उम्र में अपने पति को खो देती है। उसका एक पुत्र अशोक एवं एक पुत्री कमला है। अशोक शहर में एक मिल में काम करता है। माँ और बहन की जिम्मेदारी अशोक पर आ जाती है, उसके पिता ने चार वर्ष पहले साहूकार से अभाव एवं लाचारी की स्थिति में कर्ज़ लिया था। गाँव के अधिकतर गरीब दलितों को सहूकार से कर्ज़ लेना ही पड़ता था। कर्ज़ पूरा न लौटाने पर साहूकार के खेत में मजदूरी करनी पड़ती थी। दिन–रात परिश्रम करके भी रामदीन मूल कर्ज़ के रुपये का एक आना भी कम न कर सका और बदले में झूठन और पूराने कपड़े देकर साहूकार उन पर और उपकार कर देता। गाँव में यह वातावरण रामदीन ही नहीं उसके पूरखों ने भी देखा है। किन्तु रामदीन का बेटा इस कर्ज़ की चक्की में पिसना नहीं चाहता। वह पिता के क्रियाकर्म में कर्ज़ लेकर कोई रीति–रिवाज़ नहीं निभाना चाहता। वह उन सारे नीति–नियमों, रुढ़ियों, परंपराओं का खंड़न करता है, जिससे कर्ज़ के नीचे उसका एवं उसकी माँ–बहन का शोषण हो।

रामप्यारी एक अशिक्षित महिला थी। पति की मृत्यु और दो बच्चों के भविष्य को लेकर वह चिंतित थी। एक ओर समाज के रुढ़िचुस्त रीति–रिवाज और दूसरी ओर पुत्र का उनके समक्ष विद्रोह। वह पुत्र के तर्क–वितर्क को समझ नहीं पाती और दूसरी ओर साहूकार के छल–छद्म को वह पहचान नहीं पाती। बेटा समाज का एवं साहूकारों का विरोधी बन जाता है और शहर चला जाता है, किन्तु रामप्यारी को उसी वातावरण, उसी समाज के बीच रहना था, जिसमें आज तक गरीब को धमकाकर, उसे धर्म का भय दिखाकर महाजन कर्ज़ के रुपयों के विषय में डराते हुए कहता है–

"शास्त्रों में लिखा है, बाप के मरने के बाद बेट्टे को ही कर्ज़ उतारना पड़ता है। वरना बाप की आत्मा को दुख पहुँचता है और बेट्टे को पाप लगता है।"[50]

रामप्यारी अपनी बेटी कमला के साथ गाँव में बड़ी मुश्किल से कुछ दिन गुजारती है। महाजन कर्ज़ के रुपये न मिलने पर और अशोक की बगावत पर कुढ़ा हुआ रहता है। वह अपना कर्ज वसूल करने का एक रास्ता बनाता है। रामप्यारी और कमला जब रात्रि के समय खेत में पानी देने जाती हैं, तो अपने कारिंदे के साथ मिलकर रात्रि के अंधकार में वे दोनों का बलात्कार करके उनकी हत्या कर देता है। बदले में अशोक कसम खाता है, कि उनके हत्यारे को दंड देकर ही रहेगा। महाज़न और उज्जड सिंह दोनों की हत्या करके अशोक स्वयं दोषियों को दंड देता है। मारने से पहले वह महाजन से कहता है–

"महाजन कानून किन लोगों का है तुम अच्छी तरह से जानते हो।..... दलित गाँवों में तो पिटता ही है साथ ही साथ कानून का ढिंढोरा पीटने

वाली अदालतों में भी पिटता है।.....अदालतों में न्यायाधीश तथा सरकारी वकील भी सवर्ण होते हैं। वे भला फिर कैसे दलितों के पक्ष में अपने निर्णय दें। महाजन इस गाँव की दलित अबलाओं का मुझ पर बहुत दिनों से कर्ज़ था। जिनकी इज्जत तुमने लूटी, आज समय आ गया है कि मैं कर्ज़ चुकाऊँ ?"[51]

कहानी में साहूकारों का दलितों पर अत्याचार, कर्ज़ की समस्या, गरीबी, बेगार, एवं गाँव में स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार पर प्रकाश डाला गया है। अशोक जैसे युवा लड़के इन रुढ़िचुस्त पुराने नीति–नियमों एवं परंपराओं को बदलना चाहते हैं। न्याय सही रास्ते से न मिलने पर गलत रास्ते से ही सही, अपनी दृष्टि में न्याय पाना चाहते हैं। हमारी न्याय की प्रक्रिया को यदि सुधारा जाय तो अशोक जैसे युवाओं को कानून अपने हाथ में न लेना पड़े।

9.'बात'– रत्नकुमार सांभरिया

रत्नकुमार सांभरिया द्वारा रचित **'बात'** कहानी की नायिका **सुरती** एक अशिक्षित दलित स्त्री है। पति की असमय मृत्यु के कारण एक मात्र पुत्र की जिम्मेदारी उसी पर थी। लेखक ने उसके विषय में लिखा है–

"सुरती। बत्तीस की उम्र। सुती देह। लंबी काठी। गोरा सरीखा गोर रंग। गोल चेहरे पर पान से पतले होंठ। हंसगामिनी। रुप की धनी। भाग की ठगी। उस पर एक–एक कर दुःखों के पहाड़ टूटते रहे थे। सास–ससुर पहले ही चल बसे थे। पति के मरने के दो महीने पहले उसका बड़ा लड़का 'हट' गया था। बाप का साया सिर से बचपन में ही उठ गया था। माँ चार साल पहले गंगालाभ हो गई थी। भाई भावज ने बेवफाई पा न ली थी। गरीबी लदी सुरती रोज़–रोज़ आ तंग करेगी।"[52]

इतनी समस्याएँ होने पर भी सुरती चरित्र की धनी थी। कोई उस पर गलत दृष्टि डाले तो उसे चप्पलों से पीटने में डरती नहीं थी। आठवीं कक्षा में पढ़ रहे राधू की स्कूल में जबरन सौ रुपये हर विद्यार्थी से टयूशन की फीस वसूली जाती थी। राधू की तीन महीने की तीन सौ रुपये फीस बाकी थी, जिसकी वजह से रोज तीन महीनों से उस, मास्टरजी दंड दिया करते थे। सुरती अपने पुत्र की शिक्षा में बाधा नहीं आने देगी, यह वादा उसने अपने मरते पति से किया था। वह पूरे गाँव में उधार लेने जाती है, किन्तु कोई मदद नहीं करता। मजबूरन धींग नामक पुरुष, अधैड़ अविवाहित, लंपट सवर्ण से उसे मदद लेनी पडती है।

धींग तो ताक में था, कि कब सूरती उसके शिकंजे में फँसे। सुरती के पास गिरवी रखने को कोई वस्तु नहीं थी, इसलिए वह एक बात का वचन देती है, कि वह एक महीने में उसके रुपये लौटा देगी। लंपट धींग दिन–रात सुरती के सपने देखने लगता है और दूसरी ओर सुरती उससे बचने के लिए दिन–रात एक करने में लग जाती है। दिन में वह उन दो घरों में काम करती है, जिन्होंने उसके पति के इलाज के लिए रुपये दिए और रात में वह ऊन की फेक्ट्री से लाई लच्छियाँ की पुनियाँ बनाकर दे आती है। दिन–रात परिश्रम करके वह धींग की 'बात' के वादे को पूरा करके अपनी पवित्रता बचाना चाहती है। एक स्त्री के लिए उसकी पवित्रता एवं चरित्र से बढ़कर कुछ नहीं है।

सुरती अशिक्षित स्त्री थी। पति उसे पढ़ना सीखाता है, किन्तु वह भूल जाती है। उसे अफसोस होता है, कि काश वह भी पढ़ना–लिखना जानती, तो उसे दूसरों से हिसाब–किताब न पूछना पड़ता। अपना काम स्वयं अपने बल पर कर लेती। धींग भी सुरती की दीनहीन दशा, एकाकी जीवन, गरीबी, और मजबूरी का फायदा उठाकर सुरती के शरीर को पाना चाहता था। एक महीने के कठोर परिश्रम के बाद सुरती तीन सौ पचास रुपये जुटा लेती है, किन्तु धींग उसे चुरा लेता है। सुरती की मंजिल उसके समीप आकर दूर चली जाती है। जैसे ही, उसे धींग की इस हरकत का पता चलता है, वह उसे सबक सीखाने के लिए उसके घर पहुँच जाती है और उस पर बिजली की तरह टूट पड़ती है।

सुरती अशिक्षित दलित नारी है, किन्तु अत्यंत ही स्वाभिमानी, परिश्रमी, चरित्र की धनी एवं साहसी भी है। धींग भी उसके इसी स्वभाव से डरकर उसे उसकी ईच्छा के विरुद्ध हाथ लगाने से हिचकिचाता है। सवर्ण धींग दलित स्त्री के शरीर को पाना चाहता है और इसके लिए वह जाति–पाति का सारा भेद भूल जाने को तैयार है, दूसरी ओर सुरती दलित स्त्री है, जो अपने चरित्र को दागदार होने से बचाने के लिए कठोर परिश्रम करती है। वह अशिक्षित है, किन्तु अपने बूरे वक्त में भी, धींग के समक्ष समर्पण नहीं करती और अपनी 'बात' के वचन को निभाने के लिए हर प्रयास करती है। सुरती का चरित्र अत्यंत ही प्रभावशाली है। लेखक ने अंत में सुरती का रौद्र रुप दिखाया है, जो नारी–शक्ति का परिचय देता है। सुरती अपनी 'बात' को न्याय देती है, इसमें उसकी जीत है। अशिक्षित पात्र होने पर भी वह अपनी अलग पहचान बनाने में सफल होती है। गाँव में अशिक्षित दलित महिलाओं के शोषण पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही सवर्णों की स्वार्थी मनोवृत्ति को चित्रित किया गया हैं।

2.3. दलित कामकाजी महिलाओं का शोषण

1.'सुमंगली' – कावेरी

कावेरी की प्रस्तुत कहानी **'सुमंगली'** एक अनाथ दलित स्त्री की कहानी है। **सुगिया** को नहीं पता उसके माता–पिता कौन हैं ? वह कहाँ से आई है ? जबसे होश सँभाला, तब से वह स्वयं को ठेकेदार की रखैल ही समझती थी। जहाँ वह मजदूरी करती थी, वहाँ का ठेकेदार 14 वर्षीय सुगिया पर बलात्कार करता है। दुखना की माँ सुगिया की देखभाल करके उसे स्वस्थ होने में मदद करती है। उसे सान्त्वना देते हुए कहती है–

> **"चुप रह बेटी ! चुप रह। यह तो एक–न–एक दिन होना ही था, पर तू बड़ी अभागन है री। जो इस छोटी उम्र में ही सब कुछ झेलना पड़ा। अब एकदम चुप हो जा, वर्ना उस पिशाच को अगर मालूम हो गया तो तेरी चमड़ी उधेड़कर रख देगा। हाँ हम गरीबों का जन्म ही इसलिए हुआ है। हमारी मेहनत से अट्टालिकाएँ तैयार होती हैं और पुरस्कार के बदले में हमारे शरीर को रौंदा जाता है।"**[53]

सुगिया की तरह ही मजदूरी करने वाली स्त्रियों को ठेकेदारों की गंदी निगाहों से बचना मुश्किल होता है। वे चाहकर भी उसका विरोध नहीं कर पाती है।

अगर वह काम छोड़ देती हैं, या अत्याचार का विरोध करती हैं तो भूखों मरने की नौबत आ जाती है।

सुगिया का दुख सुनने वाला या दूर करने वाला कोई नहीं था। उसकी सहायता कोई चाहकर भी नहीं कर सकता था, क्योंकि जो व्यक्ति उसका साथ देता वह ठेकेदार का दुश्मन बन जाता। सुगिया की विवशता का पूरा फायादा ठेकेदार उठाता है। जब चाहता है, वह सुगिया का इस्तेमाल करता है। दुखना सुगिया के दुख को समझता है, परंतु लाचार हो जाता है। सुगिया गर्भवती है, यह जानकर उससे पीछा छुड़ाने के जिए ठेकेदार दुखना से जबरन सुगिया का विवाह करवा देता है। दुखना को वह प्रेम देता है, जिसकी उसे हमेशा तलाश थी। सुगिया, एक पुत्र को जन्म देती है। सभी सुखी हो जाते हैं, किन्तु दुखना चार मंजिला इमारत में काम करते समय गलती से फिसल जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है।

बचपन से सुगिया को कोई प्रेम देने वाला नहीं मिला था। दुखना को पाकर वह, अपनी सारी पीडा और भूतकाल की सारी कड़वी यादें भूल चूकी थी। अचानक फिर से वह उसी स्थिति में पहुँच जाती है। दुखना की माँ उसे सहारा देती है। सुगिया परिश्रम करके अपने बेटे सुखदेव का भरण–पोषण करती है। माता और पिता दोनों का प्यार उसे देती है। सभी जानते हैं, कि सुखदेव ठेकेदार का पुत्र है और दुखना की माँ भी जानती है, फिर भी वह सुगिया को कभी ताने नहीं देती, बल्कि उसी का साथ देने के लिए सबसे झगड़ा कर लेती है। वह जानती थी, की इसमें सुगिया का कोई दोष नहीं है। दोष तो गरीबी और मजबूरी का है, यदि गरीबी न होती तो सुगिया कभी ठेकेदार की हवस का शिकार न होती और अपराध करके भी ठेकेदार खुले आम शान से न घूम पाता।एक दिन सुखदेव को तेज़ बुखार आता है, सुगिया के पास एक भी रुपया नहीं था। किसी ने उसकी मदद नहीं की, तो मजबूरी में वह ठेकेदार से मदद माँगने गई। वह ठेकेदार से अपने बच्चे को बचाने की भीख माँगती है। ठेकेदार अत्यंत ही निर्दयी स्वभाव का था, स्वयं के मरते बच्चे को वह नहीं बचाना चाहता। वह सुगिया को अपनी हवस का शिकार बनाता है। मजबूरी में एक माँ अपने बच्चे की जान बचाने के लिए अपने शरीर की कुर्बानी देने को विवश हो जाती है। बाद में ठेकेदार उसे कोई मदद नहीं करता और वहाँ से भगा देता है। अपने निर्जीव बेटे को लेकर सुगिया जहाँ–जहाँ जाती है, सभी पुरुषों का रुप ठेकेदार जैसा ही होता है। सुगिया की जवानी उसके लिए विपदा बन जाती है। वह दौड़ते हुए एक प्राइवेट डिस्पेन्सरी में पहुँचती है और डॉक्टर के पैर पर बच्चे को रख देती है। डॉक्टर बच्चे को देखकर सुगिया को बताते है कि अब वह मर चुका है। सुगिया गरीबी के कारण अपने छोटे से बच्चे को खो देती है। दुखना की माँ अपने पोते और बेटे की मुत्यु को नहीं झेल पाती और मृत्यु को प्राप्त हो जाती है।

एक बार फिर सुगिया इस दुनिया में अकेली रह जाती है। कोई उसका साथ नहीं देना चाहता। ऐसी स्थिति में वह अकेली एक झोंपडी में रहती है और उसका साथ देती है मंगली नामक एक कुतिया। काली–भयावनी रात में सुगिया के अकेलेपन का सहारा वही मंगली बन जाती है। जो प्रेम और स्नेह मनुष्य उसे नहीं दे पाए वह प्रेम मंगली कुतिया से वह पाती है। सुगिया जो कमाती है उसका आधा वह मंगली को खिलाती है और आधे में अपना काम चलाती है। मंगली को वह अपनी बहन–बेटी–माँ या दादी सब कुछ समझने लगती है। सुगिया को तेज बुखार होता है, ऐसे में मंगली ही उसके साथ है। वह मंगली से कहती है–

"मंगली तुझमें और मुझमें क्या कर्फ है। तु भी जीवन से हारी, मैं भी हारी। जिएँगे साथ, मरेंगे साथ। तेरे और मेरे दिल को समझने की कोशिश किसने की ? किसी ने तो नहीं।"[54]

गरीबी के कारण मनुष्य की स्थिति पशुओं के समान हो जाती है। अनाथ सुगिया की परिस्थिति एक पशु के समान है, जिसे समझने की कोशिश किसी ने नहीं की। जो हमेशा अकेली ही रही। इस समाज ने उसका उपयोग किया और फेंक दिया। आखिर कब तक सुगिया जैसी युवतियों पर अत्याचार होता रहेगा ? समय से पूर्व ही उसे युवती से स्त्री बनाया जाएगा। ऐसे दुराचारियों को समाज क्यों नहीं सज़ा देता ? वे सरेआम लोगों से मान–सम्मान कैसे पाते हैं। सुगिया को इंसाफ क्यों नहीं मिला ? आदि प्रश्न इस कहानी से उठते हैं।

फ्लेश–बेक में लिखी गई प्रस्तुत कहानी की नायिका सुगिया अपने पर किए गए अत्याचार का विरोध नहीं कर पाती। पेट की भूख के समक्ष वह विवश दिखाई देती है। भाषा पात्रानुकूल है। सुगिया लाचार, विवश दिखाई गई है, वह कुछ ऐसा कार्य नहीं कर पाई जिससे अन्य दलित, गरीब बेबस स्त्रियों को कोई सीख मिल सके या अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाने के रास्ता मिल सके।

2. 'अत्तू और अम्मा'– सूरजपाल चौहान

'अत्तू और अम्मा' कहानी सूरजपाल चौहान द्वारा रचित है। प्रस्तुत कहानी में दस–ग्यारह वर्षीय **अत्तू** अपनी माँ के साथ गाँव में रहता था। पिता की मृत्यु हो चुकी थी। माँ गाँव में ठाकुर–ब्राह्मणों के घर सफाई का काम करती थी। माँ स्वयं शिक्षित नहीं थी, इसलिए अपने पुत्र अत्तू अर्थात् अत्तर सिंह को पढ़ा लिखाकर अच्छा आदमी बनाना चाहती थी। गरीब इतनी कि तन ढाँकने के लिए साबूत एक भी कपड़ा न था। अत्तू भी निक्कर का फटा भाग दिखाई न दे, इसलिए कमीज निक्कर के बाहर ही रखता था। एक टूटी–फूटी झोंपड़ी में दोनों रहते थे। उनके पास बटाई पर ली गई एक भैंस थी।

गाँव में दलितों की स्थिति दयनीय थी। उच्च वर्ण के लोग उन्हें बात–बात पर अपमानित करते थे। दलितों के पास उनके द्वारा अपमानति होने, प्रताडित होने पर भी उन्हीं के कदमों में सिर झुकाने के अतिरिक्त कोई मार्ग न था। सवर्णों के घर की गंदगी साफ करने पर बासी खाना थोड़ा–सा मिल जाता था, जिससे शरीर को जीवित रखा जा सकता था। अत्तू की प्यासी भैंस बंबे से बहते पानी से प्यास बुझा रही थी। वहीं पर ठाकुर बलवन्त अपने बैल को पानी पिला रहा था। भैंस को पानी–पीते देख ठाकुर के तन–बदन में आग लग गई, क्योंकि जिस ओर से पानी बहकर आ रहा था, भैंस ने वहीं मुह डाल दिया था। एक भंगी की भैंस पानी कैसे पी सकती थी ? ठाकुर पहले भैंस को, फिर अत्तू पर संटियाँ बरसाता है। अत्तू जब रोते हुए घर आता है, तब बीमार माँ उसके चोट के निशान देखकर तिलमिला जाती है। बलवन्त सिंह दरवाजे पर आकर कहता है–

"अरी ओ भंगनिया, तेरे छोरा ने अपनी भैंस को जूठो पानी मेरे बैल कू पिला दीनौ (दिया) आज तो मैंनें छोड़ दियौ.....फिर याने ऐसी हरकत की तो ठौर मार दूंगौ।"[55]

जब मनुष्य से अस्पृश्यता की जाती थी, तो पशु से यह अस्पृश्यता रखना बड़ी बात नहीं, किंतु इस बात से उस गाँव के सवर्णों की मानसिकता का पता चलता है। दलितों को भंगी कहकर वे उन्हें अपमानित करने का एक भी मौका हाथ से जाने नहीं देते थे। उन्हें उनके असली नाम से न बुलाकर अशोभनीय नाम से पुकारा जाता था क्योंकि यह उन्हें बर्दास्त नहीं था, जैसे अत्तर सिंह की जगह 'अत्तू' और 'चित्रा' की जगह 'चित्तरिया' कहकर पुकारते थे। गाँव में रुखे–सूखे निवालों के भी लाले पड़े हुए थे, इसलिए न चाहते हुए भी चित्रा अपने अत्तू को लेकर ठाकुर बलवन्त सिंह के घर जाती थी। अत्तू के बाल–मानस पर इस भेद–भाव को लेकर, अमीरी–गरीबी की इस खाई को देखकर कई प्रश्न उभरते हैं जैसे वह माँ से कहता है–

"अम्मा हम गरीब क्यों हैं ? हमारा घर पोखर के किनारे क्यों है ? अम्मा हमारा घर ठाकुरों–बामनों के घरों जैसा क्यों नहीं है ?"[56]

चित्रा, अत्तू के इन सवालों का उत्तर देने में असमर्थ थी, क्योंकि वह स्वयं नहीं जानती थी, कि ईश्वर ने उन्हें दलित क्यों बनाया है या इतना गरीब, पीडित, अस्पृश्यत, अपमान से भरा जीवन उन्हें क्यूँ मिला है, आखिर उनका दोष क्या है ? ईश्वर ने उनके शरीर की रचना तो सवर्णों की तरह की है, किन्तु सवर्णों को इतनी सुविधाएँ, मान–सम्मान, धन–दौलत, ऐशो–आराम दिया है और उन्हें इससे वंचित भला क्यों रखा हैं ? यह प्रश्न चित्रा का ही नही उसकी तरह की हर माँ और अत्तू जैसे बच्चों के मस्तिष्क में अवश्य आता है।

ठाकुर बलवन्त सिंह उसके घर सफाई काम करने आई चित्रा की आबरु लूटने का प्रयास करता है। जिसके पशु को भी वह अपने पशु से छूत लगने की बात कहता था, वह आज चित्रा जैसी दलित के सौन्दर्य को लूटने के लिए सब कुछ भूलकर स्वयं पशुवत व्यवहार करने लगता है। माँ की चीख सुनकर अत्तू दौड़कर आता है। उसका खून खौल उठता है, जब वह माँ को बुरी हालत में देखता है। वह झाडू से बलवन्त सिंह पर प्रहार करता है और ठाकुर से छूटकर चित्रा दूर हट जाती है। अत्तू पर वार करने वाले बलवन्त सिंह के गुप्तांग पर चित्रा पूरी ताकत से प्रहार करती है, जिससे चोट खाकर वह गिर पड़ता है। लोग एकत्र हो जाते हैं। हमेशा की तरह गलती दलित की ही मानी जाती है। कोई चित्रा की सच्चाई को स्वीकारता नहीं। ठाकुर प्रताप सिंह चित्रा को डपटते हुए कहता है–

"अरी ओ भंगनिया, तुझे तो छूने भर से ही छूत लग जाएगी, झूठा आरोप लगाती है.... ठाकुर होकर कोई भला भंगिन से मुंह काला करेगा, अगर अपनी खैर चाहती है तो चली जा यहां से, नही तो मारे लठिया के कमर तोड़ दी जाएगी।"[57]

जब अन्यायी स्वयं ही न्याय देने वाला हो तब न्याय की उम्मीद भी कैसे की जा सकती है ? चित्रा अपमानित होकर अत्तू के साथ घर लौटती है। अत्तू नहीं जानता था, कि इतने बुरे व्यक्ति के घर माँ क्यों काम करने जाती है ? माँ अत्तू को भूखा मरता नहीं देख सकती थी, इसलिए उसे समझाती है, कि जब तुम पढ़ लिखकर बड़ा होकर नौकरी करोगे तो मैं यह काम छोड दूँगी। अत्तू सोचता है, कि पढ़ने–लिखने से आदमी जल्दी बड़ा होता है, इसलिए वह एक रात में ही पढ़ लिखकर बड़ा होकर

अपनी माँ को ऐसे कार्य से मुक्ति दिलाना चाहता है। उसे देर रात तक पढ़ने से चित्रा जब रोकती है, तब वह कहता है–

> **"माँ, तूने ही तो कहा है कि ज्यादा पढ़ने–लिखने से आदमी जल्दी बड़ा हो जाता है...मुझे रात भर में बड़ा आदमी बनना है, जिससे कि सुबह हम ठाकुर के घर न जाएं और उसकी मार से बच सके।"**[58]

अत्तू की बाल–बुद्धि है, किन्तु माँ के अपमान को वह नहीं भूल पाता है। इस तिरस्कृत, अमानित, प्रताडित जीवन से वह हमेशा के लिए मुक्ति चाहता है, जिसके लिए वह हर प्रयास करने को तैयार है।

प्रस्तुत कहानी में चित्रा के माध्यम से दलित कामकाजी महिलाओं के शोषण को प्रस्तुत किया गया है। सवर्ण पुरुषों का अत्याचार, शोषण कहानी में बलवन्त सिंह के पात्र द्वारा देखा जा सकता है। अत्तू के प्रश्नों और समस्याओं को बाल–मनोविज्ञान तौर पर देखा जा सकता है। संपूर्ण कहानी 'अत्तू' और 'अम्मा' दोनों माँ बेटे के इर्द–गीर्द घूमती है, इसलिए शीर्षक उचित है। संवाद छोटे एवं अपने गुणों से युक्त हैं। उद्देश्य की दृष्टि से देखें तो अत्तू में आए बदलाव अर्थात् माँ को शोषण से मुक्त करने के लिए पढ़–लिखकर बड़ा आदमी बनने का विचार मुख्य है। यह अन्याय, शोषण, अत्याचार, अस्पृश्यता, असमानता आदि से मुक्ति पाना है जो वर्षो से मुक्त होने के लिए तड़प रहे हैं।

3.'मजूरी'–मोहनदास नैमिशराय

मोहनदास नैमिशराय द्वारा रचित **'मजूरी'** कहानी भद्र पुरुष एवं परिवार के अभद्र व्यवहार को प्रस्तुत करती है। **सुमति** एक मजदूरिन महिला थी। महेश नामक एक धनवान पुरुष सुमति से मजदूरी तो करवा लेता है, किन्तु उसे मजूरी नहीं देता। सुमति गरीब अकेली स्त्री थी, जो अपने भूखे और बीमार बच्चे की दवाई के लिए चिंतित थी। वह कई बार महेश के दरवाजे पर अपनी मजदूरी लेने जाती है, हर बार यही उत्तर मिलता है, कि एकाउटेंट छुट्टी पर है, उसके आने पर मजदूरी मिलेगी। महेश अपने नए घर के गृह प्रवेश के लिए दिल खोलकर खर्च कर रहा है, उसकी पत्नी भी सोसायटी में अपने स्टेटस के अनुसार सारी व्यवस्था करने में व्यस्त है, किन्तु दोनों सुमति की मजूरी के थोड़े से रुपये देने के अपने कर्त्तव्य को नज़अंदाज कर देते हैं।

सुमति अपने अधिकार की, अपने परिश्रम की मजूरी लेने के लिए बार–बार अपमानित होती है। गृह–प्रवेश के दिन महेश का घर महेमानों से भरा था। सुमति एक बार फिर मजूरी लेने पहुँचती है। नौकर उसे भीतर नहीं जाने देता, फिर भी आज वह इंसाफ माँगकर ही रहेगी, यह सोचकर सुमति भीतर घुस जाती है। महेश महेमानों के समक्ष अपने क्रोध को शांत रखकर एक बार फिर पुराना राग आलापता है, कि एकाउंटेट के आने पर मजूरी मिल जाएगी। सुमति के सब्र का बाँध टूट जाता है, वह चीख उठती है और कहती है–

> **"बता ना कब आयेगा थारा अकाउनटेट। थारे कू झूठ बोलते हुए सरम नई लगै.... ।"**[59]

सुमति को महेश से मजूरी तो नहीं मिलती, किन्तु भीड़ में अपमानित हुआ महेश सुमति को दंड देने के लिए अपने कुत्ते को इशारा कर देता है। कुत्ता सुमति पर झपटता है और कई जगह उसे काट लेता है। इतने लोगों की भीड़ मौजूद होने पर भी गरीब सुमति को कोई नहीं बचाता। दर्द से चीखती, तड़पती सुमति पर किसी को दया नहीं आती। एक गरीब की दयनीय दशा सबको आकर्षित तो करती है, किन्तु उसके दुःख को दूर करने या सहायता करने के लिए कोई आगे नहीं बढ़ता। यहाँ मात्र महेश ही नहीं उसके घर आए महेमान भी उसी की तरह की मनोवृत्ति के हैं, ऐसा संकेत मिल जाता है। जैसे एक कहावत है 'चोर चोर' मोसेरे भाई।

सुमति तो उसी रात को दम तोड देती है। मरने से पहले अपने बीमार बच्चे से वह कहती है–

> **"बेट्टे याद रखना। महेश नाम है उसका। बड़ा होकर अपनी माँ का हिसाब मांगना उससे। एक–एक पाई वसूल करना।"**[60]

सुमति जैसी मजदूरिन महिला का शोषण महेश जैसा धनवान व्यक्ति करता है। एक गरीब मजदूरिन अपनी मजूरी माँगती है, तो उसे मजूरी तो नहीं मिलती बल्कि उस पर कुत्ता छोड़कर उसे मरने की स्थिति में छोड़ दिया जाता है। सुमति को इंसाफ नहीं मिलता, किन्तु उसकी आखिरी इच्छा यही होती है कि, उसका बेटा उसकी माँ को इंसाफ दिलाए।

4. 'जंगल की रानी'–ओमप्रकाश वाल्मीकि

'जंगल की रानी' ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित कहानी है। कहानी की नायिका एक आदिवासी युवती **कमली** है। कमली ने मैट्रिक तक पढ़ाई की है। वह पढ़ाई में काफी तेज थी, इसलिए उसके हेडमास्टर उसकी बहुत तारीफ करते है और कमली के पिता को सलाह देते हैं, कि वे उसकी शादी में ज़ल्दबाजी न करें और कमली को अपने पैर पर खड़ा होने दें। हेडमास्टर अपनी स्कूल में ही शिक्षिका के पद पर कमली को लगा देते हैं।

कमली एक आदिवासी युवती थी। 'नया सवेरा' दैनिक का संपादक सोमनाथ जब उसे पहली बार ग्रामीण महिला प्रशिक्षण शिविर में देखता है तो सोचता है–

> **"जंगल की रानी.....सहसा उसके मुँह से निकल पड़ा था। वह अपलक उसे देखता रहा था। वह अपने कार्य में व्यस्त थी। सोमनाथ को लगा था कि 'जंगल का फूल....।' सभ्य–समाज में आकर भी अपनी महक बिखेर रहा है। उसे प्रकृति की इस अनुपम रचना पर गर्व हो आया था। मिट्टी की सौंधी–सौंधी गंध ने उसके जिस्म में चमक पैदा कर दी थी...गहरा श्यामल रंग, भरा–पूरा शरीर, चेहरे पर जंगल की ताज़गी.....उसने 'जंगल की रानी' को केमरे में उतार लिया था।"**[61]

कमली के सादगी भरे भोले सौन्दर्य से कार्यक्रम के डिप्टी साहब अधिक प्रभावित होते हैं। उनके भीतर का शिकारी तेंदुआ उस फूल को रौंदने के लिए तड़प उठता है। अपने ऊँचे ओहदे और एस. पी. एवं विधायक की मदद से वे कमली को प्राप्त

करने के लिए षड़यंत्र रचते हैं। ग्रामीण महिला प्रशिक्षण शिविर के कार्यक्रम के बहाने वे कमली को शहर बुलाते हैं और रात्रि के समय गुंडे भेजकर उसे गेस्ट हाऊस लाते हैं।

कमली को जानवरों की तरह बाँधकर लाया जाता है। जब वह अपने समक्ष तीन शिकारियों को देखती है, तो समझ ही नहीं पाती कि दिन के उजाले में भद्र दिखने वाले ये पुरुष रात्रि के अंधकार में वहेशी जानवर कैसे बन गए। कमली 'जंगल की रानी' थी। वह आसानी से किसी का शिकार नहीं बन सकती थी। वह अपनी नारी शक्ति का परिचय देती हुई तीनों पुरुषों से संघर्ष करती है और सभी को पछाड़ देती है। इस संघर्ष में उसके कपड़े चिथड़े बन जाते हैं, कई खरोचें उसे आती हैं, किन्तु विधायक की गर्दन जब वह पकड़ लेती है, तो विधायक को मृत्यु निकट दिखाई देने लगती है। वह साक्षात् दुर्गा बन जाती है। जीते जी कमली किसी पुरुष के समक्ष हार मानती नहीं है। एस. पी. अपने मित्र को बचाने के लिए कमली की हत्या कर देता है।

'नया सवेरा' का रिपोर्टर सोमनाथ जब महँगी साड़ी में लिपटी कमली के मृत शरीर को रेल्वे ट्रेक पर देखता है, तो उसे शक होता है, कि यह आत्महत्या नहीं, बल्कि हत्या एवं बलात्कार की घटना है। सभी बड़े अधिकारी मिलकर पहले तो कमली का शोषण करते हैं और बाद में उसकी सच्चाई उजागर करने वाले सोमनाथ की हत्या करवा देते हैं।

प्रस्तुत कहानी में फ्लेश बेक पद्धति का प्रयोग बखुबी किया गया है। कमली जैसी कामकाजी युंवती का शोषण हमारे समाज और शहर के उच्च अधिकारी करते हैं। यह घटना आज आए दिन समाचार पत्र में देखी जाती है, कि नेता, पुलिस, विधायक, सांसद, मंत्री, डिप्टी आदि जैसे सम्मान जनक पद पर आसीन व्यक्ति किस तरह से सत्ता का दुरुपयोग करते हैं और गरीबों, बेसहारा लोगों पर अत्याचार करते हैं। हमारी कानून व्यवस्था और उसमें भ्रष्टाचार निर्दोष को दोषी और दोषी को निर्दोष बना देती है। जिसके पास धन है, पद है, उसे कोई दंड नहीं दिया जाता। किन्तु कमली जैसी युवतियाँ आखिर कब तक इन दरिंदों के हाथों शोषित होती रहेंगी ? 'जंगल की रानी' होना क्या उसका गुनाह है ? कहानीकार ने उन सभी उच्च अधिकारियों का पर्दाफाश किया है, इस कहानी के माध्यम से, जो दिन में तो न्याय के गीत न गाते हैं, किन्तु रात के अंधेरे में अन्याय एवं अत्याचार करते हैं।

5.'मंगली'—कुसुम मेघवाल

कुसुम मेघवाल द्वारा रचित **'मंगली'** कहानी में **मंगली** एक दलित स्त्री है, जो मजदूरी करती है। घर में पति कई दिनों से बीमार पड़ा है, किन्तु उसके इलाज के लिए उसके पास पैसे नहीं हैं। मंगली जल्द से जल्द पति के पास जाकर उसे दवाईयाँ देना चाहती है, किन्तु ठेकेदार अत्यंत ही सख्त स्वभाव का है, वह मंगली एवं अन्य मजदूरों से अधिक काम करवाता है और काम का समय पूर्ण होने पर भी उन्हें छुट्टी नहीं देता है। मंगली को मजदूरी करने से इतने रुपये नहीं मिलते, जिससे वह पति की सारी दवाईयाँ ले सके। थोडी दवाईयाँ ले सके। समय पर दवाईयाँ न मिलने से वह मृत्यु को प्राप्त होता है। मंगली अकेली रह जाती है। मंगली गरीब थी, पति के अंतिम संस्कार के लिए उसके पास रुपये नहीं थे। चंदा इकट्ठा करके थावरा का अंतिम संस्कार किया जाता है।

एक गरीब स्त्री जो मजदूरी करके जीवन निर्वाह करती हो, उसे पति की मृत्यु का शोक मनाने के लिए साल–छं महीने का समय नहीं मिल सकता। पेट की आग

बुझाने के लिए उसे सारे दुःख–दर्द भूलकर मजदूरी करने घर से निकलना ही पड़ता है। अधेडवय का ठेकेदार मंगली को अकेला समझकर उससे हमदर्दी दिखाता है और उसे अपने आउट हाऊट में रहने के लिए अनुमति देता है। मंगली ठेकेदार को बड़ा दयालु समझने लगती है, किन्तु वास्तव में तो ठेकेदार अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद अपने खाली जीवन में मंगली को अपनी रखैल बनाकर अपने सूने जीवन में आनंद लाना चाहता था। मंगली ठेकेदार की इस चालाकी को समझ नहीं पाती और अपनी तरह वह दूसरों को भी भोला–भाला और निर्दोष मन का समझती है। जिसे वह रक्षक समझती थी, वह भक्षक निकलता है। ठेकेदार उसे थावरा के दुःख को भूलकर उसके साथ सुखपूर्वक रहने के लिए समझाता है। मंगली पतिव्रता स्त्री थी, वह धन के लोभ और शरीर सुख के लिए अपनी पवित्रता भंग नहीं करना चाहती थी। वह अपनी ओर बढ़ रहे ठेकेदार से कहती है–

> **"खबरदार, मुझे छूने की कोशिश मत करना। मैं एक ब्याहता औरत हूँ।"**[62]

शराबी ठेकेदार ने सोचा था कि मंगली उसकी रखैल बनकर रहेगी तो, किसको पता भी नहीं चलेगा कि उसका संबंध किससे है और रात्रि के समय वह मिलते रहेंगे। मंगली उसके शैतानी रुप को जब जान जाती है, तो कहती है–

> **"ठेकेदार साहब, मुझे नहीं पता था कि आपके अंदर एक शैतान छिपा है और आप मुसीबत में मेरी मदद करने के बहाने अपना उल्लू सीधा करने के लिए मुझे यहाँ लाए हैं। किन्तु मैं भी साफ कहे देती हूँ कि मैं भी एक भीलनी की जाई हूँ जो जंगल में लकड़ियाँ काटते हुए भी बच्चे को जन्म दे देती और अपना नाल स्वयं काटकर बच्चे को गोद में उठाकर घर चली आती है। इसलिए अब और आगे बढ़ने की कोशिश मत करना वरना बकरे–सा काट के रख दूंगी।"**[63]

मंगली आत्मरक्षा के लिए ठेकेदार पर वार करती है, वह बेहोश हो जाता है। मंगली पुलिस स्टेशन जाकर शिकायत दर्ज करवती है। पुलिस उसकी मदद करती है और ठेकेदार को गिरफ्तार करती है।

प्रस्तुत कहानी में मंगली एक कामकाजी स्त्री है, जिसका शोषण ठेकेदार करता है। विधुर ठेकेदार लोभ देकर मंगली को जीतना चाहता है, किन्तु स्वाभिमानी मंगली परिश्रम करके जीवन अकेले बीता सकती थी, किसी की रखैल बनकर आनंद मनाना उसे नामंजूर था।

2.4.पारिवारिक शोषण का शिकार हुई महिलाएँ

1. 'उसका फैसला'–कालीचरण प्रेमी

दलित नारी मात्र सवर्णों के अत्याचार का शिकार बनती आई है इतना ही नहीं परंतु अपने समाज और परिवार के लोगों से भी उसे पीड़ा और दुःख मिलता आया है। प्रस्तुत कहानी की नायिका **बिंदा** अपने ही परिवार के शोषण को सहती है, और जब उसकी सहन–शक्ति खत्म हो जाती है, तो अपना फैसला स्वयं करके, उस कष्ट भरे जीवन से मुक्त हो जाती है।

प्रस्तुत कहानी में चंदर नामक नामर्द युवक से बिंदो जैसी सुंदर–सुशील, समझदार युवती का विवाह हो जाता है। चंदर के पिता खचेड़ू, जिसे लोग महाशय जी कहते थे और माँ का नाम लक्ष्मी था। उसकी कमर में कूबड़ होने से लोग एसे कुबड़ी नाम से ही जानते थे। चंदर की कमजोरी गाँव में सभी जानते थे, इसलिए कोई उससे अपनी बेटी की शादी नहीं करना चाहता था, इसलिए अपनी सुशील लड़की को बड़ा दान–दहेज देकर उसका ब्याह कर देते हैं।

बिंदो के हाथों की मेहंदी अभी उतरी भी नहीं थी, कि उसकी सास ने सारे घर की जिम्मेदारी उस पर लाद दी। सुर्योदय से पहले ही वह उठ जाती और घर का सारा काम निबटाकर वह सोने से पहले सास के हाथ–पाँव दबाती। उसकी इतनी सेवा और परिश्रम से भी सास–ससुर उससे खुश नहीं थे। बल्कि उसे दिन–भर ताने दिया करते, जिससे बिंदो का मन दुःखी रहने लगा। नई–नवेली दुल्हन अपनी आँखों में कितने सपने लेकर ससुराल आती है, कि वहाँ उसे प्रेम–अपनापन और पति का साथ मिलेगा जिसे पाकर वह अपने नए जीवन की शुरुआत करेगी। बिंदो के जीवन में शादी के बाद ऐसा कुछ भी नहीं होता। न तो उसे सास–ससुर का स्नेह मिलता है और न ही पति का प्यार। उस घर में वह एक नौकरानी के अतिरिक्त कुछ नहीं थी।

चन्दर पौरुष से हीन व्यक्ति था, फिर भी बिंदो उससे कोई शिकायत नहीं करती, बस अपने बहू होने के कर्त्तव्य का पालन पूरी लगन से करती है। घर में जब भैंस दूध देना बंद कर देती है, तो सास–ससुर कहते हैं–

> **"बहू के पैर अच्छे नहीं हैं। इसके आते ही घर में मुसीबतें आ पड़ी हैं। यह असैनी है, कम्बख्त है। घर का काम–धन्धा ही चौपट हो गया।"**[64]

दलित समाज में अंधविश्वास और रुढ़िचुस्त रीति–रिवाज अधिक होते हैं। शिक्षा का अभाव होने के कारण अंधविश्वास पर वे अधिक विश्वास करते हैं। बिंदो जैसी गुणी बहू पर भी वे उस पर शंका करते हैं और अत्याचार करते हैं। धीरे–धीरे उनका अत्याचार बढने लगता है। अब वे उसे जंगल–बाहर का सारा काम सौंप देते हैं। एक दिन दोपहर में प्रधान का लड़का अकेलेपन का फायदा उठाकर उसे दबोच लेता है। लुट–पिट कर रोती हुई वह घर आती है। उसका साथ देने की जगह पति, सास–ससुर उसी की गलती बताने लगते हैं कि–

> **"तू ही कुलटा है। जंगल में गुलछर्रे उड़ाती फिरती है। अब रोने का नाटक करती है।"**[65]

बिंदो यहाँ दोहरे शोषण का शिकार बनती है, एक और सवर्ण समाज का युवक उसका शारीरिक शोषण करता है, दूसरी ओर उसी का परिवार उस पर शारीरिक और मानसिक अत्याचार करते हैं। निर्दोष होने के बाद भी उसे दोषी कहा जाता है। वह दोषी है यह सिद्ध करने के लिए पंचायत बुलाइ जाती है, जिसमें बलात्कारी बेटे के प्रधान बाप के फैसले से बिंदो क्या उम्मींद रख सकती थी?

बिंदो जानती थी, कि इस पंचायत में एक तरफ फैसला किया जाएगा। जब उसका परिवार ही उसके खिलाफ है, तो भला प्रधान उसे निर्दोष क्यों कहेगा। पिता समान ससुर भी मौका पाकर उसकी अस्मत लूट लेता है। तब भी चन्दर बिंदो को दोष देता है। ऐसी परिस्थिति में बिंदो अपमानित होकर अपने मायके नहीं जाना चाहती। वह जानती थी, कि फैसला उसके हक में नहीं होगा। इसलिए जब चंदर उसे पंचायत में ले

जाने के लिए उसके पीछे भागता है, तो वह कुएँ में कूदकर अपना फैसला स्वयं कर लेती है। पारिवारिक शोषण बिंदो को आत्महत्या के लिए मजबूर कर देता है।

2 'बंदरिया'– लखनलाल पाल

'बंदरिया' कहानी का नायक अरुण एक शिक्षित युवक है। वह शहर में नौकरी करता है। तीन वर्ष बाद वह गाँव में अपने माता–पिता के पास जाता है, तो गाँव का वातावरण, रहन–सहन, दीनचर्या आदि देखकर उसे सुहानी की याद आती है। सुहानी उस गाँव की नवेली दुल्हन थी। उसकी सुन्दरता की चर्चा पूरे गाँव में फैली थी। उसे देखकर गाँव का हर आयु का पुरुष उसे पाने को तरसता। सुहानी में सुन्दरता के साथ–साथ, समझदारी, स्पष्टवक्ता, परिश्रम, तर्क, चतुराई आदि गुण भी थे। उसे गाँव की अन्य औरतों की तरह पूरा घूँघट निकालना पसंद नहीं था। वह आधा घूँघट काढ़कर चलती थी। गॉव की महिलाएँ उसकी इस हरकत से ईर्ष्या करने लगीं। उसके पति झल्लन के कान में भी यह बात पहुँचती है। अपनी इज्जत–आबरु पर ठेस पहुँचाने वाली सुहानी से वह कहने लगा–

"रास्ते में थूथर उधार के काहे चलती हो ?"
सुहानी ने अपनी बड़ी–बड़ी आँखों से झल्लन की तरफ देखा। वह लापरवाही से बोली– "थूथर उधार लओ तो का हो गओ। सबरी बइरें (औरतें) थूथर–ई ढाके रहात का।"
"नवेली बहुए परदा करके चलती है। तू अभी से दाई बन गई ?"
"बड़ी जिज्जी तो परदा नईं करत। मोकों अलग से परदा है का ?"
"भौजी को दो लड़का हो गए। तू ओकी बराबरी करिहै का ?
झल्लन भगभकाया"
"दो लड़का जलमे से परदा खतम हो जाता का ई गाँव में ?"
सुहानी पर झल्लन की भभकी का कोई असर नहीं हुआ।
"परदा न करने वाली बइरें बिगर जात। समझी।"
झल्लन सुहानी पर अपना पूरा रौब झाड़ रहा था।
"बिना परदा करने वाली सब बइरें बिगर गई का ? आजकल सहर में तो कोऊ परदा नइ करत।"
"सहर की बात छोड़। मैं कहत कल से तू मुंह ढाक के बाहर निकला कर।"
"'मो से नई होत ई सब।" सुहानी ने दो टूक जवाब दे दिया।" [66]

उपर्युक्त संवाद में सुहानी उस परंपरा का विरोध करती है, जिसके तहत नई बहुओं को परदा करना आवश्यक माना जाता था। अपने पति के हर प्रश्नों का तर्कपूर्ण उत्तर उसके पास है। वह घूँघट की शरम को नहीं, आँखों की शरम को अधिक महत्त्व देती है। झल्लन उससे तर्क में हार जाता है, तो उस पर हाथ उठाता है। सुहानी उसका हाथ पकड लेती है।

झल्लन अपने बड़े भाई गौरीशंकर के साथ एक घर में रहता था। दिखने में झल्लन और सुहानी की जोड़ी बहुत अच्छी थी, किन्तु यह कोई नहीं जानता था, कि झल्लन में पौरुष की कमी है। वह सुहानी की जवानी की दहकती आग के सामने सूखे पत्ते के समान था। सुहानी अपने वैवाहिक जीवन के अधूरेपन को बहुत समय तक छुपाए

रखती है, किन्तु आखिर वह भी स्त्री थी, अपना दुःख उसके मुँह से किसी स्त्री के समक्ष निकल गया। झल्लन के संबंध में यह बात पूरे गाँव में फेल गई।

झल्लन शराबी तो नहीं था, किन्तु जुए की लत उसे थी। वह सुहानी के गहनों को जुए में हार जाता है, इसके अतिरिक्त गाँव के ब्राह्मण अवधू पंड़ित से सूद पर रुपये लेकर भी रुपये हार जाता है। पति द्वारा चोरी करना, जुआ खेलना, कामचोरी करना, गाली–गलौज करना आदि बातों से सुहानी दुःखी रहती थी। सास–ससूर की मृत्यु के बाद जेठ–जेठानी उसे अलग कर देते हैं। जेठानी हैजा की चपेट में आकर मर जाती है, और उसके पुत्र–पुत्री की जिम्मेदारी फिर सुहानी पर आती है। झल्लन सूद पर लिए रुपये लौटाने में असमर्थ था, इसलिए घर छोड़कर भाग जाता है। पति के इस कदम से सुहानी और अधिक अकेली हो जाती है, क्योंकि अब गाँव का हर पुरुष उस पर अपना अधिकार जमाने के लिए कोशिशें करने लगा था।

अवधू पंड़ित सुहानी से छेड़–खानी करता है, उसके अकेलेपन का फायदा उठाना चाहता है। सुहानी का जीवन संघर्षों से घिर जाता है, पति उसे समस्या के बीच छोड़कर चला जाता है। इसी बीच अरुण और सुहानी की मुलाकात होती है। सुहानी को पूरे गाँव में मात्र अरुण ही अच्छा व्यक्ति लगता था। अकेली सुहानी पर पूरे गाँव में स्त्री–पुरुष सभी चरित्रहीन होने का आरोप लगाने लगते हैं। सुहानी अकेले ही सबसे सामना करती है, किन्तु किसी से कभी नहीं डरती। आए दिन सुहानी को परेशान करने वाले अवधू पंड़ित जब उसके नज़दीक आना चाहता है तब वह कहती है–

"पंड़िज्जी, तुम्हाई घरवाली नहियां का।"
"है, काये नहियां, बिल्कुल है पर जो बात तोमें है ऊमें निहयां।"
हममें और तुम्हारी घरवाली में का अन्तर है ?
"बहुत अन्तर है सुहानी" अवधू रिरयाया–"तोरी चाल कौ दिवानौं हों
मैं। जब तोरे कूल्हे मटकत हैं तो संगीत की स्वर तहरियां फूटत।"
कोट मरिज करवा ले मोसे.....अपनी घरवाली बना ला,"[67]

अवधू जैसे लम्पट व्यक्ति के सारे पासे उल्टे पड़ जाते हैं। सुहानी चतुराई से काम लेती है, वह अवधू की रखैल नहीं बनना चाहती और न ही उसकी पत्नी बल्कि वह अवधू को एक ऐसे जाल में उलझाकर छोड़ना चाहती है, जिससे वह कभी बाहर न आ पाए और न ही उसे परेशान कर सके। अवधू फिर भी जबरन उसे पाना चाहता है, सुहानी के पास ब्रह्मास्त्र भी था। वह अवधू को चेतावनी देती है, कि यदि उसने कुछ गलत किया तो बलात्कार के आरोप में वह उसे जेल भिजवाएगी। अवधू ब्रह्मास्त्र का घाव नहीं सह पाता और डरकर चुप हो जाता है। वह जाते–जाते बडबड़ाती है–

"बरगओ बभना दिमाग खराब कर देत। ऊसे गगरी नई छुवन देत,
गोड़न में गोड़े बिंधाने से छूत नई लगत। सुहानी को सिखाउत।"[68]

सवर्ण अवधू सुहानी को अपना घड़ा नहीं छूने देता क्योंकि वह दलित है, किन्तु उससे शारीरिक संबंध बनाने में उसे कोई संकोच नहीं था। सुहानी के पति ने उसे धोखा दिया था, जिसके कारण गाँव की औरतें भी सुहानी को ही दोषी मानकर उसे ताने देती रहती थी। पुरुष वर्ग भी सुहानी को पाने के लिए सारे दाव–पेच आजमा रहा था, अवधू पंड़ित अपने सूद के रुपये एवं सूद दोनों सुहानी से वसूलने के लिए तत्पर था। ऐसी स्थिति में भी सुहानी अपने चरित्र की रक्षा करती है। वह खेती करके दो वर्ष में

अवधू का मूल धन उसे लौटाती है और अपने पति द्वारा की गई गलती की सज़ा स्वयं भूगतती है। किसी धोखेबाज लंपट के साथ वह जीवन नहीं बीताना चाहती, इसलिए गाँव के सीधे–सादे बूढ़े व्यक्ति के साथ रहने लगती है। तीन वर्ष तपस्या की तरह तन तोड़ परिश्रम करने वाली सुहानी को अरुण उसकी चंचलता के कारण बंदरिया कहता था, आज बीस की उम्र में चालीस की दिखने लगी। उसकी सुकुमारता, सुंदरता, चुलबुलाबपन, चंचलता सभी को तीन वर्षों के संघर्ष ने छीन लिया।

पुरुष के गुण न होने पर भी झल्लन सुहानी जैसी सुंदरी से विवाह करता है और कर्जा लेकर उसे छोड़कर भाग जाता है। निर्दोष सुहानी पति के गुनाहों की सज़ा भुगतती है और बूढ़ व्यक्ति के साथ जीवन बीताने एवं अकेले न को दूर करने के लिए विवश होती है। इस कहानी को लेखक ने फ्लेश बेक शैली में प्रस्तुत किया है। गाँव का वातावरण, परंपरा, रहन–सहन आदि के वर्णन से कहानी के देशकाल–वातावरण का एक साकार चित्र उभरकर हमारे समक्ष आता है। भोजपुरी बोली के संवादों से पात्रों की चरित्रगत विशेषता को प्रस्तुत किया गया है। ग्रामीण वातावरण में लिखी गई यह कहानी झल्लन की कायरता एवं सुहानी के साहस को प्रस्तुत करती है। भेड़ियों से घिरे होने के बावजूद सुहानी अपनी आत्मरक्षा करने में सफल होती है। झल्लन से मिले धोके के कारण वह किसी युवक, या पुरुष पर भरोसा नहीं कर पाती। इसीलिए एक बुजुर्ग को अपना साथी स्वीकार कर लेती है।

सुहानी के जीवन में जिनते भी दुःख या संघर्ष बाहरी पुरुष–स्त्री के कारण आते हैं, उनसे अधिक दुःखी वह अपने पति के व्यवहार कमजोरी, कायरता के कारण होती है। बाहरी व्यक्ति जब शोषण करता है, तब घर के लोग उसे हिम्मत देते हैं, किन्तु जब परिवार वाले या जीवन–साथी धोखा दे, तो स्त्री कहाँ जाएगी। कौन उसे सहारा और हिम्मत देगा ? यह प्रश्न हमारे समक्ष इस कहानी से उभरकर आता है।

3.'सुनीता'–रजत रानी 'मीनू'

'सुनीता' रजतरानी मीनू द्वारा रचित कहानी है। प्रस्तुत कहानी में दलित परिवार में जन्मी **सुनीता** के जीवन संघर्ष को चित्रित किया गया है। सुनीता के माता–पिता पुत्री से अधिक महत्त्व पुत्र को देते थे, क्योंकि पुत्रियाँ तो दूसरे के घर जाएँगी और पुत्र ही वंश चलाएगा। सुनीता के पिता अपनी पुत्री की पढ़ाई के प्रति लगाव को उचित नहीं ठहराते और कहते हैं–

> **"ए सुनीता, कान खोलकर सुन। हमें तुम्हें कलट्टर–वलट्टर तो बनाना नहीं। वैसे भी तू पराये घर जाएगी तो चिट्ठी–पत्री लायक थोड़ी सी पढ़ जा। वंश तो लल्ला ही चलाएगा।"**[69]

सुनीता के पिता छेदालाल अपनी पुत्री को उतना महत्त्व नहीं देते, जितना की पुत्र को। पुत्र को अंग्रजी मीडियम की अच्छी स्कूल में और अच्छी सुविधाएँ भी देते हैं, जबकि सुनीता के प्रति अपने कर्त्तव्य को इतना महत्त्व नहीं देते। सुनीता की माँ भी अपनी पुत्री एवं पुत्र में भेदभाव करती हैं। वे सुनीता की पढाई से अधिक महत्त्व घर के कामों और छोटे भाई की देखभाल को देती हैं।

सुनीता को एक ओर अपने परिवार से संघर्ष करना पड़ता है, तो दूसरी ओर समाज के सवर्ण लोगों से। जिस गाँव मे वह रहती थी, वहाँ दलित युवतियों को शिक्षा देना बुरा कहा जाता था। बुरी नज़र डालने वाले सवर्ण उसे व्यंग्य से कहते–

''चमारी पढ़–लिखकर अफसर बनेगी। गाँव में बड़ी जाति के लोग तो लड़कियों का पढ़ाना जरुर नहीं समझते, पर छेदा चमार को अपनी औकात का शायद पता नहीं है।''[70]

दलित स्त्री का दोहरा शोषण होता है। वह दलित एवं सवर्ण समाज उसकी शिक्षा एवं प्रगति में बाधा डालता है। सुनीता हार नहीं मानती, परिवार के नकारात्मक वातावरण में भी वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अधिक परिश्रम करती है और ट्यूशन करके अपनी शिक्षा के लिए आर्थिक रुप से स्वनिर्भर बनती है। वह बी. ए. करके टीचर बनती है। बाद में एम. ए., एल. एल. बी. की शिक्षा पाकर आई. ए. एस. बनना चाहती है। दहेज न दे पाने की स्थिति में छेदालाल उसके विवाह की व्यवस्था नहीं कर पाता। सुनीता को पिता समान ही एक राजनीतिक गुरु मिल जाता है। सुनीता उनके मार्गदर्शन से अपनी अच्छी भाषण कला के कारण राजनीति में प्रवेश करती है। दो बार चुनाव में हारकर वह तीसरी बार जीतती है और सांसद बन जाती है। वह अपने समाज के हित के लिए राजनीति में प्रवेश करती है। उसके सांसद बनने से उसके परिवार और गाँव के सवर्ण–दलित सभी लोग जो अब तक उसकी शिक्षा के विरोधी थे, उसकी प्रगति के काँटे थे, वे सभी अब उसके आगे–पीछे घूमनें लगते हैं। सुनीता अपने माता–पिता के मस्तिष्क में पुत्री और पुत्र के बीच के भेदभाव को अंत में मिटा देती है। पिता अपनी पुश्तैनी–रुढ़िगत सोच के पुरुष अहम् और मनुवादी–व्यवस्था की दी हुई हीन भावना को भूलकर बेटी पर गर्व महसूस करते हैं।

प्रस्तुत कहानी में सुनीता पारिवारिक शोषण को झेलती है। वह दोहरे शोषण को सहकर भी कमजोर नहीं बनती, बल्कि दुगनी शक्ति से परिश्रम करके अपनी शक्ति का प्रमाण सबको देती है। सुनीता की शिक्षा, उसके अच्छे, सच्चे विचार एवं अच्छे गुरु का मार्गदर्शन उसके लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होते हैं। कहानी में संवाद कम है। सुनीता के मात्र दो ही संवाद दिए गए हैं। सुनीता जैसे पात्र दलित महिलाओं के लिए प्रेरणा का रुप है। जब तक स्त्री स्वयं शिक्षित नहीं बनेगी, तब तक वह अपने आपको समाज के रुढ़िगत, परंपरागत, बंधनों से मुक्त नहीं कर सकती । यदि उसे अपना अस्तित्व, अपनी अस्मिता को बचाना है, तो उसे स्वयं से पहल करनी होगी, चाहे परिवार साथ न दे, फिर भी उसे हार नहीं माननी चाहिए, क्योंकि उगते सूर्य को तो सभी नमस्कार करते हैं।

4. 'मेरा समाज'– डॉ. सुशीला टाकभौरे

डॉ. सुशीला टाकभौरे द्वारा रचित **'मेरा समाज'** कहानी में उन्होंने दलित समाज एवं परिवार में दलित महिला की कैसी स्थिति होती है, उस पर प्रकाश डाला है। साथ ही दलितों की प्रगति में बाधक तत्त्वों पर भी अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। लेखिका जिस दलित समाज से संबंध रखती है, वहाँ पुरुष प्रधान समाज है। अधिकतर पुरुष शराब पीते हैं और नशे में जानबुजकर झगड़े में अपना समय, शक्ति का व्यय करते हैं। वाल्मीकि समाज के लोग अपने परंपरागत कार्य को ज्यादा आरामदायक समझते हैं, क्योंकि सुबह दो–तीन घंटे के बाद वे स्वतंत्र रुप से घूम–फिर सकते थे। नौकरी के अभाव में शिक्षित युवक भी इसी काम में लग जाते थे। लेखिका को ऐसी विचारधारा रखने वालों पर गुस्सा आता है, जो अपने सफाई कार्य से इस तरह चिपके रहते हैं और सम्मान पूर्ण कार्य का तिरस्कार करते हैं।

लेखिका जिस समाज में रहती है, वह उस वाल्मीकि समाज में स्त्रियों कि दयनीय स्थिति है। घर में अधिकतर पुरुष अपने सफाई के कार्य को पत्नी और बच्चों के हाथों सौंपकर स्वयं आराम से पड़े रहते हैं। इसी कार्य से स्कूल के बच्चे उनसे नफरत करते हैं और इस भेदभाव के व्यवहार से बच्चे आगे की पढ़ाई नहीं कर पाते। लड़कियों को भी शादी के बाद इसी कार्य में लगा दिया जाता था । बहू नौकरी भी करती और बच्चे–घर का कार्य भी सँभालती। इसके बावजूद रात–दिन पति की मार, सास की गालियाँ और ननद के ताने सुनती रहती। दलित स्त्री को परिवार के अत्याचार से छुटकारा कभी नहीं मिल पाता लेखिका के विचार इस प्रकार हैं–

> **"यह एक परंपरा चली आ रही है कि–अपनी जवानी से बुढ़ापे तक सास पिटती रहती थी, यही बात आने वाली बहू के साथ होती थी। पति शेर जैसा दहाड़ता, दुश्मन जैसा मारता, पत्नी रोती रहती फिर भी रोते–रोते घर का पूरा काम करती खाना बनाती सबको खिलाती, कभी थोड़ा, स्वयं भी खा लेती नहीं तो भूखी ही रह जाती। वह अपने अच्छे दिनों की प्रतीक्षा इस तरह करती थी कि–एक दो साल में शायद उसकी स्थिति बदले या एक दो बच्चे हो जाने पर उसे न्याय मिलेगा या बच्चे बड़े होने पर उसके दिन फिरेंगे या फिर बहुएँ आने के बाद स्थितियाँ बदल जायेंगी–इसी प्रतीक्षा में पूरा जीवन निकल जाता था।"**[71]

यहाँ पारिवारिक शोषण का शिकार हुई दलित महिलाओं की स्थिति को लेखिका ने बडी मार्मिकता से प्रस्तुत किया है। दलित स्त्री का शोषण बाहरी के साथ–साथ उसके अपने पारिवारिक सदस्य भी करते हैं। कम उम्र में विवाह कर दिए जाने पर शिक्षा के अभाव में ऐसी स्त्रियाँ जीवनभर सुख की आशा में दुखी जीवन व्यतीत करती हैं। लेखिका अपने जीवन को ऐसा दुःखी नहीं बनाना चाहती। इसलिए उच्च शिक्षा पाकर अपने जीवन का अपनी ईच्छानुसार जीना चाहती हैं। यह समाज तभी सुधर सकता है, जब उसकी महिलाओं में जागरुकता आए, शिक्षा आए और आत्मनिर्भरता के भाव जागें।

लेखिका ने दलित समाज में स्त्रियों की स्थिति और शिक्षा का अभाव दोनों को जोड़कर रखा है। साथ ही पूरुषों की नशेबाजी, कमजोरी एवं स्त्रियों पर अत्याचार को उनकी अद्योगति का कारण माना है। यह कहानी आत्मकथनात्मक शैली में लिखी गई है। दलित समाज के वातावरण को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें कहानी का उद्देश्य दलित समाज को आईना दिखाकर उसमें सुधार लाना है।

2.5 आर्थिक स्वतंत्रता की चाह

1.'अम्मा'–ओमप्रकाश वाल्मीकि

ओमप्रकाश वाल्मीकि की **'अम्मा'** कहानी की नायिका **'अम्मा'** गली–मुहल्लों में घर–घर जाकर सुबह–सुबह शौचालय की सफाई का काम करने वाली महिला है। यह काम उसे अपने घर को आर्थिक रुप से मदद मिल सके इसलिए शुरु करना पड़ा अन्यथा गॉव के शुद्ध वातावरण में केवल खेती का काम ही किया था। शहर में शादी हुई और घर की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण उसे लोगों के घर–घर

जाकर उनका मैला साफ करने जैसा गंदा काम करना पड़ा। अपनी सास से उसे अच्छी ट्रेनिंग मिल गई थी, कि किस तरह यह काम किया जाना चाहिए। अम्मा का पति सुकडू नगरपालिका में सफाई कर्मचारी है, जिसकी तनख्वाह मामूली थी। सास–ससुर, देवर–देवरानी और उसका एक बेटा अम्मा के तीन बच्चे, दो बेटे शिवचरण और बिसन और एक बेटी किरनलता, इस तरह दस प्राणी थे। इतने बड़े परिवार का भरण–पोषण सुकडू के वश की बात नहीं थी। अम्मा पंद्रह घरों में काम करके अपने परिवार का सहारा बनती है।

अम्मा भले ही गरीब है, जमादारिन है, दलित है, स्वाभिमानी और परिश्रमी है। उसकी दृष्टि में एक स्त्री के पास चरित्र से बढ़कर कीमती चीज कुछ नहीं। इसीलिए जब उसे पता चलता है, कि उसकी मालकिन मिसेज चोपड़ा का किसी पराए आदमी के साथ संबंध है तो वह सोचती है कि–

> **"चोपड़ा बहन जी इतनी अच्छी हैं फिर भी एक पराए मर्द के साथ....छि.... छि....कहते हुए भी शर्म आती है।"**[72]

मिसेज चोपड़ा ने अम्मा के परिवार की मदद कई बार की थी। अम्मा उसका सम्मान करती थी, किन्तु वह चरित्रहीन है, यह जानकर उसे मिसेज चोपड़ा से नफरत हो जाती है। मिसेज चोपडा का प्रेमी विनोद जब मौका पाकर अम्मा को अपनी ओर खींच लेता है, तो अम्मा झाडू से उसकी इतनी पीटाई करती है, कि उसका हाल बेहाल हो जाता है। गालियाँ देते हुए वह मिसेज चोपड़ा से कहती है कि–

> **"भैण जी इस हरामी के पिल्ले से कह देणा...हर एक औरत छिनाल ना होवे है।"**[73]

अम्मा, विनोद की वहशीयत के समक्ष कमजोर न पड़कर उसका तगडा जबाब देती है। साथ ही यह सिद्ध कर देती है कि हर औरत चरित्रहीन नहीं होती, वह गरीब है, किंतु मेहनत करके कमाती है, कोई गलत काम नहीं करती। उस दिन के बाद अम्मा उस घर में काम करने नहीं गई।

अम्मा ने अपने बच्चों को पढ़ाया–लिखाया, ताकि उन्हें कोई नौकरी मिल सके। वह नहीं चाहती थी, कि जो काम उसे करना पडा, उसके बच्चे उसी गंदगी में आएँ। उसकी मेहनत रंग लाती है। बड़ा बेटा शिवचरण दसवीं पास करके नगर–पालिका में क्लर्क की नौकरी करने लगता है। घर की स्थिति धीरे–धीरे सुधरने लगती है। अम्मा के नाती–पोते हो जाते हैं, बेटी की शादी भी हो जाती है। जब अम्मां को यह पता चलता है कि उसका बेटा रिश्वत लेकर काम करता है, तब उसका सख्त विरोध करती है वह अकेले ही बुढ़ापे में परिश्रम करके जैसे–तैसे जीवन व्यतीत करने को तैयार थी, किंतु बेटे की बेईमानी की कमाई पर वह जीवन निर्वाह करना नहीं चाहती है।

कहानी में अम्मा के पात्र में दलित नारी के परिश्रमी, ईमानदारी, स्वाभिमानी एवं नैतिक गुणों के साथ आदर्श मॉ के गुण भी पाये जाते है।

2.'चिड़ीमार'–ओमप्रकाश वाल्मीकि

ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित **'चिड़ीमार' सुनीति** नामक दलित युवती की समस्या को केन्द्र में रखकर लिखी गई है। नगरपालिका की नौकरी से रिटायर पिता हमेशा बीमार रहने लगते हैं। माँ पति और बेटी की चिंता में दुःखी रहती है। सुनीति अधूरी पढाई में ही घर की जिम्मेदारियों को अपने कंधे पर लेती है। सुनीति अपने परिवार को आर्थिक रुप से सहायता देना चाहती है। जिस समाज में वह रहती है, वहाँ लड़कियों को अधिक पढ़ाया नहीं जाता। बड़ी होते ही उन्हें घर पर बैठा दिया जाता है और विवाह कर दिया जाता है। लड़कियों का नौकरी करना दलित समाज में कम ही देखा जाता था, किन्तु सुनीति ऐसे वातावरण में भी लीक से हटकर आत्मविश्वास और दृढता से नौकरी करके अपने घर को बेटे की तरह सहयोग देना चाहती है। उसका यह मार्ग इतना सरल नहीं था। अधूरी शिक्षा, जाति, क्षेत्रीयता, तो कहीं लड़की होने के अभिशाप आदि के कारण नौकरी मिलना कठिन होता जा रहा था। सुनीति का मनोबल कभी–कभी टूटने लगता था, किन्तु फिर वह निराशा से निकलकर उससे मुक्त होने की कोशिश करने लगती थी। ऑफिस में कई बार लोग उसे डराने–धमकाने की कोशिश करते, भीतरी रुप से वह डरती थी, किन्तु बाहरी तौर से वह अपने चेहरे पर अपना डर नहीं आने देती थी।

सुनीति और उसके परिवार को जानने वाला सवर्ण, आवारा गुल्लू अपने दो साथियों के साथ बीच रास्ते में सुनीति को रोककर उसे छेड़ते, भद्दे, अश्लील इशारे करते, सुनीति निडरता से उनका सामना करती। माँ उसकी समस्या को भाँप जाती है, इसलिए सुतेज नामक युवक को सुनीति की सहायता के लिए भेजती है। सुनीति अपनी लड़ाई स्वयं लड़ना चाहती है, इसलिए वह सुतेज से कहती है–

> **"मैं उनसे नहीं डरती.....एक बार उस मोटू को थप्पड़ जड़ चुकी हूँ तब से हर रोज़ वह मुझे भंगिन कहकर चिढ़ाता है। कभी जमादारनी, तो कभी मेहतरानी कभी चूहड़ी.....मैं अनसुना करके निकल जाती हूँ।"**[74]

परिवार को आर्थिक रुप से मदद करने वाली सुनीति सवर्णों द्वारा किए जाने वाले अपमान को अनदेखा इसलिए करती है, क्योंकि यदि माँ को पता चल गया, तो वे उसे नौकरी नहीं करने देंगी। सुतेज स्वयं दलित था। वह सुनीति को इस लड़ाई में अकेला नहीं छोड़ सकता था। वह स्वयं गुल्लू के मुँह से सुनीति के लिए अपशब्द सुन चुका था। सुतेज लोहे के सलिए से गुल्लू और उसके साथियों की पीटाई करता है। सुतेज को पुलिस पकड़ना चाहती थी, किन्तु सुनीति गुल्लू की सच्चाई बताकर उसे उसके किए की सजा इंस्पैक्टर से दिलवा देती है।

सुनीति जैसी पढ़ी–लिखी दलित युवती अकेले ही सवर्ण समाज से संघर्ष करके अपने परिवार को आर्थिक रुप से मदद करना चाहती है। सुतेज अवश्य ही उसकी सहायता करता है, क्योंकि वह दलितों की इस यातना का अंत चाहता था। दलित युवतियाँ, स्त्रियॉं अपने घर, समाज, के साथ–साथ उन लोगों से भी संघर्ष करती है, जिनके साथ उसे काम करना है। सवर्ण युवती की अपेक्षा दलित युवतियों के प्रति अधिकारियों का दृष्टिकोण कुछ अलग ही होता है। कहानी का शीर्षक 'चिड़ीमार' एक व्यंग्य है सवर्ण गूल्लू जैसे युवकों पर, जो अपनी ताकत का दुरुपयोग करते हैं और अपने अहंकार को तृप्त करते हैं। किसी निर्दाष, कमजोर, निहत्थे पर अत्याचार करने

वाला 'चिड़ीमार' ही कहा जाएगा। कहानी में दलित युवकों का भी अधिकारियों द्वारा शोषण, अपमान होते दिखाया गया है, स्वयं इंस्पेक्टर वर्मा को इसलिए एस.पी. अपमानित करता है, क्योंकि उसने एक सवर्ण डॉक्टर से पूछताछ की थी। कानून के रक्षक को जब स्वयं ही अपने अधिकारों के लिए लडना पड़ता हो, वहाँ सुनीति या सुतेज के लिए यह लडाई सरल नहीं है।

2.6 परिवार में पति की भूमिका

1.'मरीधार'–विजय कांत

प्रस्तुत कहानी का नायक चमकू दलित है। यह कहानी फ्लैशबेक में रची गई है। चमकू जेल से छूटकर आता है। मरीधार में बनाए अपने घर कि ओर जाते हुए वह अत्यंत प्रसन्न है, क्योंकि कई महिनों बाद वह अपनी पत्नी सुगिया और पुत्र गोनरराम से मिलने वाला है। रास्ते में गजधारी ठाकुर बैलगाडी पर जाता दिखाई देता है, जिसे देख कर उसे पुरानी बातें याद आने लगती हैं।

चमकू दस ठाकुर खानदानों का इकलौता मेहतर था। वह इन ठाकुरों के घर का मैला ढोकर ले जाता था। चमकू को यह काम अच्छा नहीं लगता था, इसलिए उसने निर्णय कर लिया कि वह आदमी होकर आदमी का मैला नहीं उठाएगा। चमकू के फैसले पर ठाकुर उसे गालियाँ देते हैं, उसकी पीटाई करते हैं, लेकिन चमकू चट्टान बना रहता है। सुगिया भयभीत होती है। वह चमकू को समझाती है, कि यदि वह यह काम नहीं करना चाहता, तो वह स्वयं यह काम कर लेगी किंतु ठाकुरों से दुश्मनी करना उनके लिए ठीक नहीं है। चमकू नहीं चाहता था, कि जो काम आज वह कर रहा है, पुश्तों से उसके पूर्वज करते आए हैं ऐसा गंदा काम उसके होनहार बेटे गोनरराम को करना पड़े। चमकू को अपने परिश्रम पर भरोसा था। सुअर को पालकर वह अपना गुजारा करने का निर्णय लेता है। बेगार काम करने से वह सुअर पालन के काम को अच्छा समझता है। सुगिया का मन चमकू की हिम्मत को देखकार धबराता है वह कहती–

> **"वो जान के गाहक बन जाएँगे चमकू। टोक बरदाश्त नहीं होता इ सांपन को। इ का डर मानों, ना तो सब माटी कर देगे, जी जान, जोरु सब।"**[75]

सुगिया जानती थी, कि चमकू के फैसले से ठाकुरों की हवेली का इंतजाम बिगड़ गया था। चमकू की बढ़ती हिम्मत को वे किसी भी कींमत पर बरदाश्त नहीं करेंगे। इसलिए वह चमकू को समझाने का प्रयत्न करती है, किन्तु वह नहीं मानता। आखिर सुगिया को जिस बात का डर था, वही होता है। बदले की आग में जलता ठाकुर चमकू के सुअरों की हत्या करवा देता है। वे चमकू पर इल्जाम लगाते हैं, कि उसके सुअरों ने उनके खेत खराब कर दिए थे। चमकू क्रोध में आकर ठाकुरों का कलेजा बींधने के लिए तैयार हो जाता है, लेकिन एक बार फिर सुगिया उसे रोक लेती है, यह कहकर कि उसके माता–पिता बहन को इन्हीं ठाकुरों ने मार दिया था, वह नहीं चाहती कि उसका एक मात्र सहारा भी उससे छीन लिया जाए।

परमसिंह ने सुगिया के बाप को नंगा उलटा लटकाकर मारा था। उसका दोष इतना ही था, कि उसने परमसिंह के बेटे की शिकायत की थी, कि वह गाँव की औरतों–लड़कियों को छेड़ता है। सुगिया की माँ, उसकी बड़ी बहन यहाँ तक की दस

साल की सुगिया का बलात्कार किया गया था। चमकू, सुगिया के जीवन की सारी सच्चाई जानता था। इसलिए वह उसे अपनी ओर से कोई दुःख नहीं देना चाहता था।

चमकू बाँस से तरह–तरह की चीजें बनाना जानता था। उसकी कारीगरी के बल पर वह एक बार फिर नए सपने देखने लगता है। बड़ी मुश्किल से पाँच कोस दूर गाँव से बाँस लाकर तीनों मिलकर सुन्दर वस्तुएँ बनाते हैं और हाट में उसे बेचते हैं। एक बार फिर खुशियाँ उनके घर लौट आती हैं। ठाकुर से यह खुशी देखी नहीं जाती। जो व्यक्ति उसकी गुलामी नहीं करता, वह उसे छोड़कर सुखी कैसे रह सकता है? ठाकुर के इशारे पर चमकू का घर जला दिया गया। एक बार फिर चमकू, सुगिया और गोनरराम के सपने अधूरे रह गए। इस बार ठाकुर उन्हें उस भूमि से हटा देता है, जिस भूमि पर उसके पूर्वजों ने डेरा जमाया था। ठाकुर, सुगिया के रुप सौन्दर्य को देखकर अपना अगला वार तैयार कर लेता है।

जीवन से हताश, निराश होकर चमकू मरीधार अर्थात् जहाँ मरे हुए पशु फेंके जाते हैं, ऐसी भूमि पर जाकर अपना बसेरा बनाता है। बड़ी मुश्किल से वहाँ पर वह खेती करने योग्य जमीन तैयार करता है। तीनों मिलकर दिन–रात परिश्रम करके वहाँ अच्छी फसल लगाते हैं। अच्छी फसल देखकर ठाकुर उससे अपना हिस्सा माँगने आता है। ठाकुर उस जमीन को अपना कहकर, चमकू को वहाँ से चले जाने का आदेश देता है। इस बार चमकू डरता नहीं वह स्पष्ट शब्दों में ठाकुर से कह देता है, कि वह जमीन उसने अपनी मेहनत से उपजाऊ बनाई है, इस फसल पर केवल उसी का अधिकार है। ठाकुर पुलिस से मिलकर चमकू को हवालात में डलवा देता है। चमकू के खिलाफ केस चलता है। चमकू को विश्वास था, कि कानून उसकी सहायता करेगा, लेकिन जल्द ही उसका यह भ्रम टूट जाता है। यहाँ रक्षक ही भक्षक बने बैठे थे। चमकू का दुखड़ा सुनने वाला कोई नहीं था। पुलिस, वकील, जज सभी ठाकुर के साथ थे। ठाकुर और पुलिस चमकू की खाल उधेड़ देते हैं।

इधर चमकू के चले जाने पर पुलिस सुगिया को अधमरा कर देती है। सुगिया गोनरराम को कहीं छुपा देती है। पुलिस के लाख पूछने पर भी वह बेटे का पता नहीं बताती। मौके का फायदा उठाकर ठाकुर और पुलिस वाले सुगिया का बलात्कार करते हैं। उसे नग्न करके घसीटकर, बाल खींचकर सड़क पर घुमाते हैं। इतना सहकर भी वह बेटे का पता नहीं बताती। बाद में वह बेटे को लेकर कहीं भाग जाती है।

चमकू जब जेल से लौटता है, तो अपने खेत में ठाकुर के रखवाले से उसे सुगिया और गोनरा पर आई विपदा का समाचार मिलता है। बदले की आग में जलता हुआ चमकू पहले तो मरीधार में लगाए अपने खेत को जला देता है, जिसे ठाकुर ने हथिया लिया था। फिर ठाकुर की हवेली में आग लगा देता है। चमकू ठाकुर से अपना प्रतिशोध लेकर सुगिया और गोनरा को ढूँढ निकालने का संकल्प लेता है।

2. 'बीती रात अंधेरी'–डॉ.कुसुम मेघवाल

'बीती रात अंधेरी' शीर्षक कहानी हमारे देश में गरीब, अनपढ़ दलित युवकों के सुनहरे पल एवं युवावस्था को किस तरह भयंकर सामाजिक शोषण–चक्र में पिसा जाता रहा है, उसको प्रस्तुत करती है। लाखों खेतीहर मजदूर सदियों से इस शोषण की चक्की में पिसते आ रहे थे, जिनके कर्ज से मुक्ति पाना उसका मानवोचित अधिकार था। ऐसा ही युवक मंगल इस कहानी का नायक है, जो एक दलित व्यक्ति है। मंगल अनपढ़ है। उसके पिता ने बचपन से ही उसे पटेल के घर पाँच रुपया महीना

और दोनों जून की एवज में ढोर चराने पर लगा दिया था। मंगल की तीन पुश्तें पटेल से लिए कर्ज़ को नहीं चुका पाई थी। उसे चुकाना तो दरकिनार, उसे घटाना भी मंगल के बूते से बाहर था।

दिन निकलते ही मंगल को पटेल के घर काम पर हाजिर हो जाना पड़ता था। जरा–सी देर हो जाने पर पटेल की माँ व्यंग्य–बाणों की बौछार करने लगती थी। पटेल जैसे सामर्थ्यवान रुढ़ सामाजिक परंपराओं की आड़ में आर्थिक शोषण का क्रूर चक्र भी चलाते रहते हैं और थोडा सा कर्ज देकर मंगल जैसे श्रमिकों के जीवन की सारी घड़ियाँ बन्धक रख लेते हैं।

मंगल की शादी बसन्ती से होती है। बसन्ती सुंदर, सुशील, सुघड़ शरीर की युवती थी, जिसे देखकर सभी लोग उसकी तारीफ करते थे। मंगल उसकी सुंदरता को जी भरकर निहारना चाहता था। निहारना तो दूर दूसरों की गुलामी उसे इतना दूर–दूर रखती थी, कि वह उसे निकट से देखने के लिए भी तरस जाता था। मंगल दिन से रात तक हाड़ तोड़ मेहनत करता, बसंती दिन भर काम करके सास की सेवा करते–करते सो जाती।

बसन्ती और मंगल की शादी हुए चार वर्ष हो गए थे। उनके घर रमुआ अर्थात् एक पुत्र का जन्म होता है। इन चार वर्षों में कठिन परिश्रम एवं गरीबी ने बसन्ती को अल्हड़ युवती से प्रौढ़ बना दिया। बसन्ती की स्थिति देखकर मंगल सोचता है–

> **"चार बरस में ही बसन्ती अल्हड़ युवती से प्रौढ़ बन चुकी थी जबकि पटेल की बहू पाँच बच्चे जन कर भी छौकरी जैसी लगती थी। क्यों न लगे हर बच्चे के समय पाँच पसेरी घी खाती है। फिर उनके घर कौन सी घी–दूध की कमी है। हम तो छाछ के लिये भी तरसते हैं। दोनों जून यही ज्वार की रोटियाँ वह भी आधी बार पनीली दाल के साथ और आधी बार प्याज या मिर्च के साथ गले उतारनी पड़ती है। पेट की आग को पूरा ईंधन भी न मिल पाये तो बेचारी जवानी कितने दिन ठहरती।"**[76]

अर्थात् गरीबी सुन्दरता को भी छीन लेती है और अमीरी सुन्दरता घटने नहीं देती। मंगल और बसन्ती दोनों इस कर्ज से मुक्ति पाना चाहते थे, किंतु कर्ज़ उतरता ही न था। पटेल दो आदमियों का काम मंगल से लेता था और 70 रुपये महीने देता था। रमुआ के जन्म पर मंगल और खिन्न हो गया। यह सोचकर कि उसके बेटे का भविष्य क्या होगा ? मंगल अपनी पत्नी की आकांक्षाओं और कामनाओं को पूरा न कर सका, तो पुत्र को कैसे सुखी रख सकेगा ? यह सोचकर वह चिंतित रहने लगा। जिस पटेल की उसने वर्षों सेवा की, वही पटेल रमुआ की बीमारी में न तो छुट्टी देता है और न ही पैसे। तब मंगल गाँव छोड़ शहर में जा बसने की सोचता है। किंतु बसन्ती कहती है कि–

> **"शहरों में काम तो मिल जाता है पर सिर छुपाने को फूस की छत भी नसीब नहीं होती।"**[77]

गरीबों के लिए यदि गाँव में समस्याएँ हैं, तो शहरों में भी समस्याएँ हैं। शहरों में मजदूरी तो मिल जाती है, किंतु एक घर बनाना किसी मजदूर के लिए असंभव ही कहा जाएगा।

अपने बत्तीस वर्ष के जीवन में मंगल पहली बार जान रहा था, कि जीवन जीने का सुख कैसा होता है। कानून की मदद से उसे पटेल के कर्ज से छुटकारा मिलता है। वह अत्यंत प्रसन्न हो जाता है, कि रमुआ को हमारी तरह किसी की गुलामी नहीं करती पड़ेगी, साथ ही अब हमारी मेहनत की पूरी कीमत हमें मिलेगी। बसन्ती और मंगल का सपना साकार हो गया था। उन्हें कानून पर विश्वास था, साथ ही यह भी यकीन हो गया था कि सरकार की मदद से हमें हमारे सारे अधिकार मिलेंगे, हमारे बच्चे वे बुरे दिन नहीं देखेंगे जो हमने देखे हैं।

3. 'दर्द'—मोहनदास नैमिशराय

'दर्द' कहानी एक दलित परिवार के दलित होने के दर्द को बयान करती है। हरभजन एक दलित पुरुष है। उसके घर में उसकी माँ हरभजन और पत्नी **सुमन** तथा एक पुत्र आकाश है। हरभजन रोज़ शाम सात बजे तक घर लौट आता है, किंतु आज नौ बज चुके थे और वह घर पर नहीं आया था। हरभजन की माँ, पत्नी और बेटा उसका बेसबरी से इंतजार कर रहे थे। सभी को मन में शंका थी, कि कहीं कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई ? हरभजन के पिता राज्य सरकार की सेवा में चपरासी थे। उनकी दुर्घटना में मृत्यु हो जाने पर हरभजन को उनके स्थान पर चपरासी की नौकरी दे दी गई थी। वैसे तो हरभजन मैट्रिक तक पढ़ा था, उसे ऊँचा पद मिल सकता था, किंतु उन्हें यही बताया गया, कि सरकारी नियम ऐसा ही है, साथ में आश्वासन भी मिला था, कि पदोन्नति बाद में हो जाएगी।

हरभजन को यही सवाल परेशान करता है, कि दस साल उसकी नौकरी के हो गए। सभी की पदोन्नति हो गई, लेकिन केवल वही ऑफिस में था। जिसकी पदोन्नति नहीं हुई थी। माँ और सुमन हरभजन की इस पीड़ा का अनुभव करती हैं। दर्द उनके भीतर भी था –

> **"वे सोच रही थी हरभजन का क्यों उसके ऑफिस वालों के साथ झगड़ा होता है। जब भी ज्यादा होता है, तब ऐसी बेचैनी लिए वह घर लौटता है।"**[78]

जब हरभजन अपनी पदोन्नति के विषय में बड़े बाबू शर्मा जी से प्रश्न करता है, तो उनके उत्तर ने हरभजन के वजूद को हिलाकर रख दिया था। उनके उत्तर से उसे पता चला था, कि जात के सवाल कितने निर्मम होते है और उनके जवाब भी। बड़े बाबू ने उसे बडी निर्ममता एवं घृणा से जवाब देते हुए कहा था–

> **"हरभजन मेरे जीते जी तू इस ऑफिस में बाबू नहीं बन सकता। चपड़ासगिरी कर और अपने बच्चों को पाल।"**[79]

उसके पिता भी चपरासी थे, वह भी चपरासी और क्या उसका बेटा भी चपरासी ही बनेगा, यही सोचते हुए हरभजन के सीने में तेज दर्द उठा और पलभर में ही उसका शरीर ठंडा हो गया। हरदेई ने अपने पति को खोया था, अब बेटे की मृत्यु ने उसकी सारी खुशी छीन ली। पत्नी सुमन हरभन की पीड़ा समझती थी, किन्तु यह पीडा उसकी जान ले लेगी यह उसने कल्पना नहीं की थी। आज उसके पति की जान

इसलिए गई थी, क्योंकि वह एक दलित व्यक्ति था। दलित कभी ऊँचे पद पर नौकरी करे, यह सवर्ण कभी सहर्ष स्वीकार नहीं करते हैं।

हृदयगति के रुकने से हरभजन की मृत्यु हो जाती है। अंतिम संस्कार के समय बड़े बाबू पदोन्नति का पत्र लेकर आते हैं, उनकी आँखो में आँसू थे। आकाश क्रोध से उन्हें देखता है और पदोन्नति पत्र को कफन के साथ रस्सी से बाँध देता है।

हरभजन के मरने से उसकी बूढ़ी माँ के बुढ़ापे का सहारा छिन जाता है। उसकी पत्नी समय से पहले विधवा हो जाती है। सुमन ने अपने जीवन में सुख की झलक तक नहीं देखी। गरीबी में जीवन जीते हुए उसे एक आशा थी, कि पति की पदोन्नति होगी तो उसके जीवन में भी खुशियाँ आएँगी। सुमन और हरभजन अपने बेटे को अच्छी शिक्षा देकर ऊँचे पद पर नौकरी करते देखना चाहते थे। किंतु उनका यह सपना अधूरा ही रह जाता है। समय से पहले पति की मृत्यु सुमन के लिए बीच मजधार में फँसे व्यक्ति की भाँति हो गई थी। अब उसे अपनी बूढ़ी सास और बेटे आकाश दोनों को सँभलना था।

4. 'पहली रात का अंत'– उमेश कुमार सिंह

प्रस्तुत कहानी पृथ्वीपुर नामक गाँव की है। इस गाँव में ठाकुर चंदनसिंह जमींदार था। एक मात्र जमींदार होने से धन–दौलत की कोई कमी नहीं थी। उनकी हवेली, शा–नौ–शौकत देखकर कलेक्टर एवं जज तथा बड़े ऑफिसर तारीफ करे बिना नहीं रह पाते थे। ठाकुर चंदन सिंह का एक दलित कारिंदा था, जिसका नाम कलुआ था। जैसा नाम था, वैसा ही रुप था। लंबा–चौड़ा शरीर और काला रंग। उस हवेली में काम करते हुए कलुआ को पच्चीस बरस बीत गए। चालीस वर्ष की उम्र हो गई, किंतु उसे विवाह करने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई। उसकी विधवा, अंधी, बूढ़ी माँ इसी सपने को देखते हुए जी रही थी, कि एक दिन वह अपने एक मात्र बेटे का विवाह देखेगी।

ठाकुर की हवेली का एक बहुत पुराना दस्तूर था। जिसके अनुसार गाँव में जब कोई विवाह होता था, उस दुल्हन को पहली रात ठाकुर की हवेली में उसके साथ गुजारनी होती थी। नई दुल्हन को कलुआ बुलाने जाता था। सुबह सूरज निकलने से पहले उसे वापस घर भी छोड़कर आता था। वे दुल्हन रोती बिलखती आती और रोती–बिलखती ही चली जाती थीं।

ठाकुर के हर आदेश का पालन करने वाला कलुआ जब स्वयं इस सिथित का सामना करता है, तब उसे अपने गुनाह का अहसास होता है। अपनी सोलह वर्षीय पत्नी भूदा की लाज बचाने के लिए वह हवेली के इस घृणित दस्तूर को खत्म करने का निर्णय लेता है। भूदा, पति के लिए चिंतित थी, यह देखकर कलुआ उससे कहता है–

> **"भूदा नू घबड़ा रही है। अरी भागवान मैं तो समाज का कार्य करने जा रहा हूँ। मर भी जाऊँ तो आँसू मत बहाना। मैं हमेशा तेरे साथ रहूँगा। याद बनकर।"**[80]

उस पर भूदा उत्तर देते हुए कहती है–

> **"मरे तुम्हारे दुश्मन, शुभ–शुभ बोलो। क्या मरने की बात कर रहे है। मैं तो तुम्हें वीर पुरुष मानती हूँ जो अपनी पत्नी की रक्षा करने जा रहे हो। तुम सफल होकर ही आओगे।"**[81]

कलुआ इस सामाजिक दूषण को खत्म कर देना चाहता है। जिसमें हजारों अबलाओं की लाज लूटी गई थी। कलुआ को इस बात की फिक्र नहीं थी, कि नई दुल्हन के वेश में जब वह स्वयं ठाकुर के पास जाएगा, तब यदि वह पकड़ा गया तो क्या होगा ? बल्कि वह तो स्त्री वेश धारण करके ठाकुर की पहली रात का अंत करना चाहता है। फिर किसी नई दुल्हन को अपनी पहली रात ठाकुर के साथ न बितानी पड़े, इसके लिए वह अपने प्राणों की चिंता किए बिना आज ठाकुर का अंत करने का निर्णय लेता है। उसकी पत्नी भूदा अपने पति के इस साहस पर गर्व महसूस करती है, जो पत्नी की रक्षा के लिए निडरता से ऐसा कार्य करने जा रहा था।

कलुआ की माँ और सारे गाँव की दलित स्त्रियों को इस पहली रात वाले दस्तूर से गुजरना पड़ा था। सारी सच्चाई जानकर भी गाँव वाले ठाकुर की दहशत से डरते थे। न चाहकर भी इस अनचाहे दस्तूर को निभाते थे। चालीस वर्ष पहले जब कलुआ की माँ को ठाकुर के बाप ने लूटा था, तब पत्नी हरदेई की दयनीय स्थिति देखकर कलुआ का बाप रोने लगा था। उस दिन हरदेई सोचती है कि–

> **"अगर लड़का हुआ तो उसे ऐसी शिक्षा दूंगी जो मेरा बदला ले सके।"**[82]

हरदेई बड़े दुःख झेलती है, कष्ट सहती है, फिर भी वह सिर्फ इस लिए जीवित है क्योंकि वह पहली रात का अंत देखना चाहती है। उसने अपने बेटे को जब अपनी करुण कहानी सुनाई तब कलुआ अपनी माँ पर किए अत्याचार का बदला लेने के लिए आतुर हो गया। कलुआ स्वयं भुदा की साड़ी पहनकर हवेली जाता है और माँ तथा भूदा को गाँव से बाहर निकलने की सलाह देता है, ताकि ठाकुर को मारकर वे गाँव छोड़कर भाग सकें। आखिर कलुआ अपनी माँ की अंतिम इच्छा पूरी कर देता है। ठाकुर को खत्म करके जब वह माँ के पास आता है तब हरदेई कहती है–

> **"तूने मेरे दूध की लाज रख दी। आज तूने उस जानवर को खत्म करके हज़ारों अबलाओं की लाज बचाई है।"**[83]

यहाँ हरदेई का विद्रोह पूरा होता है। चालीस वर्षों से वह इस अत्याचार के अंत का इंतजार कर रही थी। तीस किलोमीटर चलते–चलते हरदेई, भूदा और कलुआ उस स्थान पर पहुँच जाते हैं, जहाँ वह सुरक्षित थे। पूरी रात बीता कर अब सुर्योदय होने वाला था। यह सूरज हरदेई के जीवन में चालीस वर्ष बाद निकला था। ठाकुर के अंत के बाद उसके अत्याचारों का भी अंत हो जाने से, यह सवेरा उन अत्याचारों से मुक्ति का सवेरा था हरदेई की पहली और अंतिम इच्छा पूरी हो चूकी थी, इसलिए अपने होनहार बेटे और बहू को आशीर्वाद देकर इस जीवन से मुक्त हो जाती है।

5.'कैद'–महेश कुमार केशरी 'राज'

'कैद' कहानी महेश कुमार केशरी 'राज' द्वारा रचित है। कहानी का नायक विष्णु पासवान अत्यंत ही गरीब था। वह अपनी पत्नी सोनबतिया और पुत्री को भूख से तडपते नहीं देखना चाहता था, इसलिए गाँव के ठाकुर दुर्जन सिंह की सलाह पाकर कि, पटना शहर में अच्छी मजदूरी मिलती है, विष्णु के साथ अन्य दलित युवक भी घर–बार छोड़कर पटना जाने को तैयार हो जाते हैं। सोनबतिया की आँखें बहुत सुंदर थीं, विष्णु उसे देखकर असीम आनंद की अनुभूति करता था। सोनबतिया को छोड़कर वह पटना जाने के लिए मजबूर हो जाता है।

दुर्जन सिंह वास्तव में एक दलाल था। वह गरीब दलितों को ईंट बनाने के भट्टे पर बेच देता था। दिलावर खान उस भट्टे का मालिक था, जो दिखने में और व्यवहार में किसी शैतान से कम नहीं था। मजदूरों को खरीदकर उनसे अधिक–से–अधिक मजदूरी करवाना उसे बहुत अच्छी तरह आता था। काम न करने पर या थोड़ा करने पर मजदूरों को इतना पीटा जाता था कि वह मृत्यु के निकट ही पहुँच जाए। गाँववालों को कैद कर बंधुआ मजदूरी करवाकर वह बदले में दो वक्त का भोजन ही देता था, मजदूरी नहीं। विष्णु जैसे कितने ही प्रवासी मजदूर इसलिए अपना घर छोड़कर आए थे, क्योंकि गाँव में मजदूरी नहीं मिलती थी, दो वक्त का भोजन नहीं मिल पाता था, बच्चे भूख से बिलबिलाते थे। यहाँ आकर उनकी स्थिति और भी अधिक दयनीय हो गयी थी।

दलित जब गाँव में थे, तो सवर्ण उनसे बेगार का काम करवाते थे अर्थात् मजदूरी न देकर मुफ्त में काम करवाना। उससे मुक्ति के लिए वे शहर में आए तो और अधिक अत्याचार को सहना पडा। विष्णु को दस वर्ष बीत जाते हैं, इस कैद में। उसकी पत्नी और बच्ची उसके वियोग में तड़पते हैं। पत्नी इंतज़ार करते–करते थक चुकी होगी, बेटी पिता के प्रेम के बगैर बड़ी हो गई होगी, यह सोचकर विष्णु अपनी हर रात गुजारता है। बीस फुट ऊँचाई की दीवारों को लाँघ पाना सरल नहीं था, किन्तु उस कैद से मुक्त होने की आशा उसमें अब भी थी। लेखक के अनुसार यह कहानी सत्य घटना पर आधारित है। कैद किए गए विष्णु और उसके साथियों को मुक्ति मिलती है, किन्तु आज भी जाने कितने विष्णु कैद में हैं और मुक्ति के लिए उम्मींदे लिए हुए इंतजार कर रहे हैं। न जाने कितनी सोनबतिया अपने पति के इंतज़ार में वियोग की पीड़ा सह रही हैं, न जाने कितने बच्चे अपने पिता के प्रेम से वंचित होने के दुःख को झेल रहे हैं। गरीब दलितों पर अत्याचार पुरानी बात नहीं है, आज भी उनका शोषण कई शहरों और गाँव में किया जा रहा है।

6.'अपना गाँव'–मोहनदास नैमिशराय

मोहनदास नैमिशराय की प्रस्तुत कहानी सवर्ण व्यक्ति द्वारा दलित स्त्री के अपमान और इस घटना के बाद दलित समाज में आई जागरुकता को प्रस्तुत करती है। सवर्ण पुरुष दलित पुरुषों से अधिक दलित स्त्रियों का शोषण करते हैं। दलित पुरुष जब कर्ज़ लेता है, तो सवर्ण उसे सूद सहित दलित स्त्री को शोषण करके वसूलते हैं। प्रस्तुत कहानी की नायिका कबूतरी के साथ यही होता है। लहना गाँव में लगभग दलित सभी स्त्री ठाकुर की हैवानीयत का शिकार बन चुकी थी। वर्षों से पीढ़ी–दर–पीढी ठाकुर का परिवार दलितों को कर्ज देकर बदले में उनकी स्त्रियों का जातीय शोषण करता आया

था। गरीब इस दशा को बदलने में असमर्थ थे। समय बलवान होता है, दलित भी स्वतंत्रता से, आत्मसम्मान से सिर उठाकर जीना चाहते हैं।

कबूतरी सुंदर, सुशील और परिश्रमी स्त्री है। विवाह के तीन वर्ष बाद उसका दसवीं पास पति सम्पत, ठाकुर से पाँच सौ रुपये उधार लेकर शहर नौकरी की तलाश में जाता है। ठाकुर के मँझले बेटे की नज़र शुरु से कबूतरी पर थी। जैसे ही सम्पत शहर जाता है, ठाकुर कबूतरी को अपने घर पर काम करने के लिए संदेश भेजता है। गाँव की हर दलित औरत ठाकुर के घर काम पर जाने का मतलब खूब अच्छी तरह जानती थी। गाँव की एक दलित स्त्री जब जंगल में कबूतरी से पहली बार मिलती है। तो उसके संवाद में उस गाँव की हर स्त्री की पीड़ा देखी जा सकती है जैसे–

औरत –तुझे पता है....। "ठाकुर अपना करज कैसे वसूलता है ?"
कबूतरी–कैसे वसूलता है ठाकुर अपना करज ?
औरत –ठाकुर मूल तो मूल, व्याज भी नई छोड़ता। एक–एक पाई की कीमत चुकानी पड़ती है आसामी को और उसकी नई घरवाली को सबसे पैले।"
"क्या...।"
कबूतरी के मुँह से अचानक निकल पड़ता है।
हाँ, अभी तू नासमझ है। क्या तुझे ठाकुर ने अपने घर पर काम करने बुलाया अभी तक ?
"भेजा था एक कारिन्दा ठाकुर ने ?" कबूतरी को अंततः कहना ही पड़ा था।
"तू गई ?" उसका अगला सवाल था।
"ना" कबूतरी बोली थी।
दोनों जैसे एक–दूसरे के और क़रीब आ गई थी। अब वे परस्पर खुलने लगी थीं। वार्तालाप में ठण्डापन न था। वही औरत फिर बोली, "आखिर कब तक नाय करेगी। पानी में रह कर मगरमच्छ से कब तक वैर.....?" मैं भी भौत दिनों तक 'नाय' करती रही थी पर।"
"पर क्या....।" कबूतरी की उत्सुकता बढ़ने लगी थी।
"पर एक दिन 'हाँ' करनी ही पड़ी।" जैसे उसके बहुत भीतर से स्वर उभरा हो।"[84]

गाँव की लगभग हर दलित स्त्री को ठाकुर का परिवार वर्षों से भोग रहा था। न चाहते हुए भी गरीबी के कारण दलित स्त्रियाँ उनके शोषण को सहती आई थीं। कबूतरी के पति को शहर गए अभी बीस ही दिन हुए थे, कि ठाकुर कबूतरी को अपनी सेवा में बुलाना चाहता है। जंगल में कबूतरी के अकेलेपन का फायदा उठाकर पहले तो उसे अपने घर चलने के लिए कहता है, जब कबूतरी उसकी बात नहीं मानती तो अपने चार कारिन्दे के साथ मिलकर उसके सारे कपड़े फाड़कर उसे नग्न कर देता है। जिस कबूतरी के चेहरे तो दूर चूडियाँ भी किसी ने न देखी थी, वैसी गाँव की बहू कबूतरी को पूरे गाँव में नग्न अवस्था में ठाकुर घूमाता है। गाँव के दलितों में ठाकुर की इस अमानवीयता को देखकर रोष तो उत्पन्न होता है, किन्तु ताकतवर के समक्ष कमजोर वर्ग आखिर क्या कर सकता था ? गाँव के लोग क्या, उसके घर के देवर, जेठ, सुसर आदि

मर्द भी कबूतरी के इस अपमान को देखने के अतिरिक्त कुछ न कर पाए। कबूतरी रोती, चिल्लाती रही, पर किसी ने उसके नग्न शरीर को चिथड़ा तक नहीं दिया।

इस घटना के बाद रात के अंधेरे में कबूतरी वैसी ही अवस्था में छिपते–छिपते घर तो लौट आती है, किन्तु उसका परिवार एक शब्द बोलने की स्थिति में न था। घर के स्त्री–पुरुष कोई भी इस अपमान को नहीं भूल सकता था। तीन दिन तक घर में कोई भी व्यक्ति अन्न का एक दाना तक नहीं खाता। गाँव के दलित स्त्री–पुरुष उनकी पीड़ा को समझते हैं, किन्तु सहनुभूती देने के लिए उनके पास भी कोई शब्द नहीं था। आज तक गाँव की स्त्रियों की आबरु ठाकुरों ने लूटी थी, किन्तु सरेआम किसी दलित स्त्री को नग्न करके घुमाना, इस गाँव में ऐसा कभी नहीं हुआ था। गाँव के युवकों में इस घटना के बाद आक्रोश बढ़ गया था। वे इंसाफ चाहते थे। उनका एलान था–

> **"हम अनशन करेंगे। भूख–हड़ताल करेंगे। हमारी समाधियाँ यहीं बनेंगी। अन्न का दाना भी न खाएँगे। उनके मरने के बाद ही अब गाँव के लोग उनकी अर्थियों को कंधा दें। बहुत सह लिया ठाकुरों के पीढ़ी–दी–पीढ़ी जुल्म। अब और न सहेंगे।"**[85]

जहाँ एक ओर गाँव के दलित बूढ़े इस घटना को भूला देने की सलाह देते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि कानून भी ठाकुर के वश में है, वहीं दूसरी ओर युवा वर्ग इस अत्याचार के प्रति विरोध प्रदर्शन करके दुबारा ऐसी घटना न घटे इसके लिए ठाकुर को दंड दिलाना चाहता था। कबूतरी का पति सम्पत जब अखबार में इस समाचार को पढ़ता है, तो दंग रह जाता है। गाँव लौटकर सबसे पहले वह अपने परिवार की भूख हड़ताल तुडवाता है।

उस गाँव में सम्पत पिछले दस सालों से गाँव की परंपराओं से, जिन्हें ठाकुरों तथा बामनों ने मिल–जुलकर बनाया था उनसे लड़ रहा था। उसे गाँव में न्याय के दो प्रतीक थे, एक मंदिर और दूसरा हवेली मंदिर बामनों का था और हवेली ठाकुरों की थी। शेष गॉव पर बनियों, कायस्थों, यादवों, कुर्मियों और राजपूतों का कब्जा था, अधिकार था। इन्हीं अधिकार सम्पन्न जातियों ने उसकी बस्ती के एक–एक आदमी–औरत, बच्चे–बूढ़े को वस्तु बना दिया था। जिसका जब जी चाहा, इस्तमाल कर लिया और जब मन किया, एक तरफ फेंक दिया। सम्पत इन्हीं परंपराओं को तोडना चाहता है।

गाँव में कई लोगों के विरोध के बावजूद कूल ग्यारह लोगों के साथ मिलकर सम्पत कबूतरी के साथ थाने में रिपोर्ट लिखवाने जाता है। थानेदार उसकी रिपार्ट तो नहीं लिखता, बल्की उन सभी की पीटाई करवाता है। इस घटना की ख़बर दूसरे कस्बे में जब पहुँचती है, तो कुछ दलित एक जूट होकर उनकी मदद करते हैं, जिसकी बदौलत उनकी जमानत भी होती है और ठाकुर के खिलाफ रिपोर्ट भी दर्ज की जाती है।

सम्पत का दादा हरिया अस्सी वर्ष की उम्र का था। उसने अपने जीवनकाल में दलितों का पीढी–दर–पीढ़ी अत्याचार होते देखा था। वह इस गुलामी से भरे जीवन से दलितों को मुक्त देखना चाहता था। उसके अनुसार हमें कोशिश ज़रुर करनी चाहिए अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाने की। इसलिए जब अखबार वाले हरिया के घर इस घटना की जानकरी लेने आते हैं और पूछते हैं कि ठाकुर दीपक सिंह ने कबूतरी के साथ ऐसा क्यों किया ? तब हरिया उत्तर देता है–

"म्हारी जात की औरतों को पैले से ही ठाकुरों के द्वारा नंगा किया जाता रहा है। उनकी बेइज़्जती की जाती रही है। गाँव का रिवाज बन गया है ये।"[86]

इस गाँव में लगभग एक हजार परिवार थे। ग्रामीण समाज परंपराओं और रढ़ियों की गिरफ्त में फँसे गाँव तथा गाँववालों पर जाति भेद की अमिट छाप देखी जा सकती थी। सवर्ण और अवर्ण दो हिस्सों में बँटे इस गाँव में एक ओर जहाँ सुख समृद्धी की सभी चीज़ें थीं वहीं अवर्ण के दलित वर्ग में गरीबी, गंदगी, फटे चिथड़े ही मयस्सर थे।

दलितों की पंचायत में इस घटना को लेकर विचार–विमर्श होता है। सभी अपनी–अपनी राय देते हैं। वे सभी आत्मसम्मान से रहना चाहते हैं। हाड़तोड मेहनत करने के बाद भी उन्हें पेट भर भोजन और शरीर ढँकने के लिए कपड़े नसीब नहीं होते। आखिर कब तक यह अत्याचार सहेंगे। जात–पात, छुआछूत गाँव और शहर दोनों में देखे जाते हैं। आखिर दलित जाएँ तो कहाँ जाएँ। अंत में पंचायत के प्रमुख अस्सी वर्षीय हरिया अपनी सलाह देता है, कि हमारे पास केवल एक ही रास्ता है, अपने दुःख को दूर करने का, वह यह है कि हम अपना नया गाँव बसाएँगे। गुलामी के जीवन को छोड़कर स्वतंत्रता से उस गाँव में नए सिरे से ज़िदगी जिएँगे।

इस प्रकार नैमिशराय जी की प्रस्तुत कहानी दलित नारी पर अत्याचार और उस अत्याचार के प्रति दलितों के विद्रोह को प्रस्तुत करती है। अब दलित शोषण के प्रति जागरुक हो गए हैं। युवा पीढ़ी के साथ–साथ पुरानी पीढ़ी के दलित भी अपने बच्चों के भविष्य को उज्ज्वल देखना चाहती है। पुरानी पीढ़ी के लोग नहीं चाहते, कि जो उनके पूर्वजों ने और उन्होंने झेला है, वही अत्याचार उनकी आने वाली पीढी भोगे। वे स्वाभिमान से जीना चाहते हैं। जहाँ जाति–पाति का कोई भेद–भाव न हो, जहाँ उनकी बहू–बेटियों का अपमान न किया जाए, जहाँ उन्हें स्वतंत्रता मिले ऐसे गाँव का निर्माण वे करना चाहते हैं।

7.'लाठी'–जयप्रकाश कर्दम

जयप्रकाश कर्दम द्वारा रचित **'लाठी'** कहानी में कहानीकार ने सवर्णों के दलितों पर होने वाले अत्याचार को प्रस्तुत किया है। अतरो का पति हरि सिंह है। उस गाँव में खेतों की सिंचाई का एकमात्र साधन अपरगंग नहर से निकला बम्बा था। उसी में से पतली–पतली नालियों के जरिए खेतों तक सरकारी पानी जाता था। खेतों की माप के आधार पर पानी के समय–घंटे बंटे हुए थे। इन्हें 'वार' कहा जाता था। खेतों की संख्या अधिक थी, किन्तु पानी की आपूर्ति बहुत कम होती थी। आए दिन पानी के विषय पर गाँव में झगड़े होते रहते थे। गाँव का बदनी जाट जाति का अडियल स्वभाव का व्यक्ति था। वह अपने वार का पानी रात को ले चुका था, हरि सिंह का वार उसके बाद का था। बदली अपने वार के बाद हरि सिंह के पानी के वार को भी ले लेना चाहता है। खेत सूख जाने का भय सभी किसानों को होता है। हरि सिंह बदनी को बहुत समझाता है, कि चौधरी मेरा खेत सूख जाएगा, किन्तु वह नहीं मानता। बदनी हरि सिंह को रोकने के लिए उसकी कमर पर लाठी से दो बार ताकत से वार कर देता है। हरि सिंह मार खाकर दर्द से तड़प उठता है, किन्तु ताकतवर के समक्ष उसका साहस जवाब दे जाता है, वह घर लौट आता है।

अतरो पति के घाव को देखकर तडप उठती है और बदनी गालियाँ देते हुए वह कहती है–

> **"बदनी, तेरा सत्यानास होएगा। तुझपै ऐसी हाय पड़ैगी कै कोई दीया जलाने वाला नहीं बचैगा। जैसा तैने जुलम करा है सत्यानासी, तुझकू इसकी सज़ा ज़रुर मिलैगी।"**[87]

निर्दोष पति की पीड़ा अतरो से देखी नहीं जाती। बदनी को गालियाँ देकर अपने दिल की भड़ास वह निकालती है। आखिर दलितों के पास अत्याचार, अन्याय के प्रतिकार में करने के लिए और रहता ही क्या है ? न तो वे उस सवर्ण के समान ताकतवर थे, न ही उन्हें अत्याचार का बदला अत्याचार से देना आता था। हरि सिंह कायर नहीं है, किन्तु बचपन से उसे यही सिखाया गया है, कि हमेशा सवर्णों का आदर करना चाहिए, उनके खिलाफ कोई कार्य नहीं करना चाहिए, यदि ऐसा किया तो उसका परिणाम बुरा होगा। हरि सिंह के पिता अपने छोटे भाई फग्गन से इस विषय पर जो वार्तालाप करते हैं, वह इस प्रकार है, कहता है–

> **"भाइया, उनका वहां गाँव का गाँव है। एक पुकार पै सौ लाठी निकल आवेंगी। पार पा लेंगे हम उनसै ? म्हारे ही खोपड़े फूट जावेंगे।"**
> **"उनका गाँव है तै म्हार गाँव ना है। वहाँ सौ लाठी है तै म्हारे यहाँ पाँच सौ लाठी है।" उसने सम्मन से कहा।**
> **हां, पाँच सौ लाठी हैं, पर कभी पाँच सौ लाठी निकली है किसी बाहर वाले के खिलाफ ? आपस में एक–दूसरे का सिर फोड़ने के नियां ही हैं ये लाठी। बाहर के सामने चार लाठी ना मिलेंगी उठती हुई।"**[88]

सम्मन द्वारा कहा गया यह वाक्य, दलितों में एकता की कमी एवं सवर्णों के प्रति उनके भय को चित्रित करता है। अन्याय के समक्ष जब तक एकजूट होकर न लड़ा जाए, तब तक उस पर जीत नहीं प्राप्त की जा सकती। हरि सिंह यह समझता है, किन्तु फग्गन किसी सवर्ण के समक्ष कभी न झुका है, न डरा है वह आक्रोश में आकर कहता है–

> **"तै हम चूड़ी पहन के घर में बैठ जावें अर यूंही पिटते रहवै ? आज उन्होंने हमारा वार छीन लिया कल कू वे हमारे खेत भी काट कै लै जावंगे। वे शेर बने अपनी मर्जी चलाते फिरैं अर हम गीदड़ बने बिलों में दुबके रहवैं। यूं अच्छी बात बतायी तुमनै। ऐसै तै वे हमारे खेत मै ही कब्जा कर लेंगे। मेरी तुम्हारी बात नहीं आ रही भइया। इस लाठी का जवाब आज ही नहीं दिया तै ये और ज्यादै शेर हो जावंगे।"**[89]

फग्गन अत्याचार होते नहीं देख पाता क्योंकि जितनी गलती अत्याचार करने वाले की होती है, उतनी ही गलती अत्याचार सहने वाले की भी होती है। दलित सवर्णों के अत्याचार को सदा सहते रहे हैं, इसलिए सवर्णों को और बल मिल जाता है। फग्गन अपने क्रोध या कार्य से संपूर्ण जाति वालों को खतरे में नहीं डालना चाहता है, इसलिए न चाहते हुए भी खून का घूँट पी जाता है।

संपूर्ण कहानी में अतरो के पात्र को देखें तो उसमें अत्याचार, शोषण के विरुद्ध आक्रोश है। अपने पति की मजबूरी को वह समझती है। वह निःसहाय है, क्योंकि ताकतवरों के समक्ष लड़ना उसे नहीं आता। गाँव के वातावरण में पली–बढ़ी अनपढ़ अतरो झगड़ा मोलकर अपने पति–बच्चे परिवार या जाति वालों की ज़िंदगी खतरे में नहीं डाल सकती। हरिसिंह और अतरो दोनों पात्रों में से अतरो अधिक मुखर चरित्र है, जबकि हरिसिंह अन्याय होने पर भी आक्रोश प्रकट नहीं करता। फग्गन द्वारा कहानीकार ने यह आक्रोश प्रकट करवाया है। प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'लाठी' एक ताकत का प्रतीक है, जिसके पास लाठी है, बल उसी के पास है। सबल हमेशा निर्बल का शोषण करता है।

8.'लोकतंत्र में बकरी'–उषा चन्द्रा

'लोकतंत्र में बकरी' उषा चन्द्रा द्वारा रचित कहानी है। कहानी में दलित अन्नपूर्णा और उसके पति विनाश बाबू का एकमात्र सपना है कि, उनका पुत्र मुन्ना पढ़–लिखकर कलेक्टर बने और दस वर्षों से गाँव के सवर्ण झिंगुरी सिंह के कब्ज़े से उनकी ज़मीन छुड़वाए। उनकी आशाएँ अब मुन्ना से ही हैं, क्योंकि दस साल से मुकदमा चल रहा है, किन्तु सरकार, कानून किसी ने भी अन्याय के खिलाफ की लड़ाई को न्याय नहीं दिया। विनाश बाबू को फिर भी कानून पर विश्वास है। वे तो गॉव की बुराइयों को जैसे कि अशिक्षा, अंधविश्वास, रुढ़िवादिता, जातिभेद, धर्म भेद आदि से लोगों को बचाना चाहते हैं। उनकी जमीन पर गाँव के पुरोहित की भी आँखें टीकी हैं।

अन्नपूर्णा गरीबी में भी अपने परिवार को दो वक्त का भोजन जैसे–तैसे करके भी देती है। स्वयं रुखी–सूखी खाती है, या भूखी रह जाती है किन्तु पति एवं बच्चे के लिए ताजा खाना बनाकर रखती है। आखिर मुन्ना को बहुत परिश्रम करके पढ़ना है, यह सोचकर वह भविष्य के सुनहरे सपने भी देखने लगती है। समझदार, निष्ठावान पति एवं होनहार पुत्र को प्राप्त करके अन्नपूर्णा जीवन के अभावों में भी संपूर्णता का अहसास पाती है।

मुन्ना को घर की बकरी से अत्यंत प्रेम था। बकरी भी उसे माँ की तरह स्नेह देती थी। बिना बकरी के पास जाए मुन्ना न खाता था, न सोता था। यही बकरी जब गाँव के सवर्ण झिंगुरी सिंह के खेत में चली जाती है, तो उसका पुत्र बलवंत सिंह गालियाँ देते हुए विनाश बाबू से कहता है–

> **"नीच कहीं का। औकात में रहा करो। बकरी पैदा किए हो तो अपने खेत में चराओ। आइंदा ऐसा हुआ, तो तुम्हारे मुनवा की टांगे चीर दुंगा।"**[90]

गाँव में चुनाव की तारीख घोषित हो गई थी। राजनीति गॉव में ही पकती है। कभी मंदिर–मस्ज़िद के नाम पर, तो कभी जाति–पांति के नाम पर। विनाश बाबू को भी पार्टियों की ओर से चुनाव के समय रुपये दिए गए थे, ताकि वे उनके पक्ष में वोट डलवाएँ। विनाश बाबू कमजोर वर्ग को उनके हक की लड़ाई में साथ देते हैं, सो दलित वर्ग उनके हर आदेश का पालन करने को तैयार था। विनाश बाबू गरीब थे, किन्तु अधर्म के मार्ग पर चलकर धन कमाना उनके आदर्शों के खिलाफ था। झिंगुरी सिंह जैसे ताकतवर नेता का साथ न देने पर ही बलवंत सिंह विनाश बाबू से बुरा व्यवहार करता है। बकरी की बात पर मुन्ना की बात आते ही विनाश बाबू अपने आपको रोक नहीं पाते और बलवंत सिंह को एक तमाचा मार देते हैं। बदले में झिंगुरी सिंह और उसके साथी विनाश बाबू और अन्नपूर्णा के घर में घुसकर दोनों को पीट–पीट कर मार डालते हैं।

स्कूल से लौटा मुन्ना माता–पिता के मृत शरीर को देखकर रोने लगता है। उसकी एक–मात्र साथी बकरी जैसे पश्चाताप कह रही हो–

> **''.....मुझे क्या मालूम था कि प्रकृति की सीमाएँ इतनी छोटी हैं। प्रकृति ने तो पूर्णता में सौंपा है, लेकिन खंड–खंड तो आप मनुष्यों ने किया है, 'जानवर' इस फ़र्क को क्या जानें।''**[91]

राजनीतिक खेलों से न तो बकरी परिचित थी, न ही विनाश बाबू, वास्तव में बकरी के बहाने ही विनाश बाबू को जाल में फँसाया जा रहा था। जब वे नहीं फँसे तो उन्हें खत्म कर दिया गया। बलवंत सिंह भी दलितों द्वारा मारा गया, किन्तु मुन्ना के आँसू पोछनेवाला बकरी के सिवाय कोई नहीं बचा।

प्रस्तुत कहानी में दलितों की ज़मीन पर सवर्णों द्वारा किया जानेवाला कब्जा, कानून से समय पर न मिलने वाला न्याय, दलितों की आशाओं, आकांक्षाओं, समस्याओं, राजनीति में उन्हें मोहरा बनाया जाना, सवर्णों द्वारा गाँव में अंधविश्वास, रुढ़िवाद, परंपरावादिता, अशिक्षा, जाति भेद, अस्पृश्यता आदि सभी विषय को चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। विनाश बाबू एवं उन्नपूर्णा की हत्या का बदला लेने वाले दलित समूह के माध्यम से दलितों में आए बदलाव एवं आक्रोश साथ ही अत्याचार, शोषण के प्रति उनका प्रतिकार प्रस्तुत किया गया है। 'लोकतंत्र में बकरी' कहानी का शीर्षक संकेत करता है, कि हमारा देश भले ही लोकतांत्रिक है, किन्तु मनुष्य तो दूर बकरी को भी उसमें स्वतंत्रता नहीं मिल पायी है। आज भी कई गाँवों में दलित सवर्णों की कैद में हैं। बंधुआ मजदूर से बेगार का काम आज भी कराया जाता है। जब तक देश में यह जाति–पांति भेद, भ्रष्टाचार, अमीरी–गरीबी की दूरियाँ, धर्म के नाम कर झगड़े खत्म नहीं होंगे, जब तक देश इन दूषणों से मुक्त नहीं हो पाएगा, तब तक देश की जनता स्वतंत्र नहीं कही जा सकती।

9.'रात'–शिवकुमार कश्यप

शिवकुमार कश्यप द्वारा रचित 'रात' कहानी में राजेश एवं उर्मिला गाँव एवं शहर में अस्पृश्यता के कारण अपमानित होते हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त करके राजेश अपने परिश्रम एवं आत्मविश्वास के बल पर उच्च अधिकारी बन जाता है। रायपुर में उसकी पोस्टींग होती है। एक ब्राह्मण शुक्लाजी के घर पर किराये के मकान में वह अकेला रहता है। जैसे ही शुक्ला जी उसके कमरे में अम्बेडकर जी का फोटो देखते हैं, वैसे ही वे समझ जाते हैं, कि राजेश अवश्य ही दलित है। शुक्ला जी स्वयं एक रिटायर्ड प्राचार्य थे, किन्तु अस्पृश्यता को वे नहीं भूलते। शहर में रहकर भी गॉव जैसा जाति–पांति का भेदभाव रखते हैं। वे राजेश को आदेश देते हैं कि घर जल्द ही खाली कर दो। राजेश स्वाभिमानी व्यक्ति था, वह भी अपमानित होकर वहाँ नहीं रहना चाहता था। वह जब छोटा था, तब गाँव की स्कूल में सवर्ण बच्चों को कुँए की बल्टी से पानी पीने की छूट थी, किन्तु दलित बच्चे प्यासे होकर भी वह बाल्टी नहीं छू सकते थे। गाँव के दलित बच्चे अक्सर इसीलिए पढ़ाई छोड़ देते थे, क्योंकि वहॉ विद्यार्थी, शिक्षक एवं आचार्य भी दलितों से भेद–भाव रखते थे। राजेश के शिकायत करने पर प्रिंसिपल साहब उत्तर देते हैं–

> **''सरकार का कानून है तभी तो तुम लोग ब्राह्मणों–ठाकुरों के लड़कों के साथ बैठकर पढ़ रहे हो और फीस भी नहीं देनी पड़ती। सरकार ने तुम**

लोगों को अपना दामाद बनाया है तो इसका यह मतलब तो नहीं कि सभी लोग तुम लोगों को अपने सिर पर बैठाए।''[92]

जब तक शिक्षित लोगों के मन से यह अस्पृश्यता दूर नहीं होगी, तब तक जाति–पांति का भेदभाव खत्म नहीं हो सकता। राजेश का प्रमोशन बम्बई में हो जाता है, किन्तु उसकी पत्नी उर्मिला इस उन्नति से खुश होकर भी उसे वहॉ नहीं जाने देना चाहती। वह जानती है कि गाँव की तरह ही शहरों में भी जातिगत भेदभाव रखा जाता है। ऐसे में नए शहर में अकेले रहना सरल नहीं होगा। वह पति से इस बात को सीधे नहीं कहना चाहती, क्योंकि इससे उन्हें ठेस पहुँचेगी, इसलिए वह बात को इस तरह कहती है–

''सुना है मुम्बई में जल्दी मकान नहीं मिलते। वहां कोई किसी से संबंध नहीं रखता। फिर वहाँ कोई हमारी जान–पहचान का भी कोई नहीं रहता है, कैसे करेंगे इतने बड़े शहर में। तुम क्या यह पदोन्नति छोड़ नहीं सकते ?''[93]

उर्मिला को क्यों पति की पदोन्नति होने से खुशी नहीं होती ? प्रगति किसे बुरी लगती है ? प्रगति से आखिर डर कैसा ? जैसे प्रश्न हमारे समक्ष खड़े होते हैं। समय के साथ–साथ राजेश भले ही पुराने ज़ख्मों को भूल गया हो, किन्तु उर्मिला उन्हें नहीं भूली थी। वह गलत भी नहीं थी। मुंबई में आकर राजेश के कार्य से उसके अधिकारी प्रसन्न होते हैं, उसका इंक्रीमेंट बढ़ने वाला था, किन्तु वह इसलिए रोका जाता है, क्योंकि वह दलित था। जैसे ही मि.अय्यर यह जान जाते हैं, कि वह शेड्यूल्ड कास्ट है, उनका स्वभाव ही बदल जाता है। राजेश की सारी काबिलियत जैसे शून्य बन जाती है।

कहानी में उर्मिला जातिभेद को कभी नहीं भूलती, वह अपमानित होते कहीं नहीं दिखाई देती है, जबकि राजेश आत्मविश्वासी, अंम्बेडकरवादी है। अपने अधिकारों के लिए लड़ना जानता है। वह बार–बार जातिदंश को झेलता है, फिर भी हार नहीं मानता। कहानी का शीर्षक 'रात' एक सांकेतिक शीर्षक है। रात अज्ञान का प्रतीक है और दिन ज्ञान का। दलितों के जीवन से जब यह अस्पृश्यता रुपी रात का अंत होगा, तभी समभाव रुपी सवेरा होगा। ऐसा होने पर ही समाज में एकता एवं सद्भाव की भावना जागृत होगी।

10.'सिमटा हुआ आदमी'–मोहनदास नैमिशराय

'सिमटा हुआ आदमी' मोहनदास नैमिशराय द्वारा रचित कहानी है। कहानी सरकारी ऑफिस के चपरासी भोलाराम और उसकी पत्नी कलिया की समस्या को केन्द्र में रखकर लिखी गई है। भोलाराम की पच्चीस वर्षीय पुत्री धन्नो विवाह के योग्य होकर भी अविवाहित है और पुत्र पढ़ाई करके भी बेरोज़गार होकर भटक रहा था। कलिया ने अपने जीवन में सुख कभी नहीं देखा और अब अपने बच्चों के जीवन में भी सुख दूर–दूर तक उसे नजर नहीं आता। दुःखों से घिरी कलिया का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, वह बात–बात पर धन्नो को गालियाँ देती है और उस पर हाथ भी उठा देती है। धन्नो अत्यंत ही सहनशील युवती है। परिवार की परेशानी और माता के कटु स्वभाव के बावजूद वह अपने आप को संयत रखकर घर के वातावरण को शांत रखने को प्रयास करती है।

भोला को अपनी समस्या का समाधान मिलने के आसार तब नज़र आते हैं, जब उसकी ऑफिस में डायरेक्टर उसी की जाति का आता है। वह सोचता है, कि गरीब दलितों की समस्या एक दलित अधिकारी ही समझ सकता है। अब बेटे की नौकरी जल्द ही लग जाएगी। वह नए साहब से इस विषय पर बात करने के लिए मौके की तलाश में था। कलिया को भी जब वह यह सूचना देता है, कि नए साहब हमारी समस्या दूर कर देंगे, तो कलिए के सूने जीवन में एक बार रोशनी की किरण फूट पड़ती है। रिटायर्ड होने की उम्र हो जाने पर भी न तो भोलाराम बेटी का ब्याह कर पाया था, न ही पुत्र को कोई रोज़गार ही मिल सका था। वह नहीं जानता था कि सारे साहब एक ही जाति के होते हैं, गरीब की कोई नहीं सुनता। बेटे की नौकरी के लिए तैयार की गई दरखास्त भोलाराम नए साहब को शैडयूल्डकास्ट एसोसिएशन की मिटिंग में देना चाहता था, किन्तु ब्राह्मण पी.ए.चतुर्वेदी नए साहब के ऐसे कान भरता है, कि वह दलितों से दूर ही रहकर अपने प्रमोशन के लिए अपनी छबि नहीं बिगाडना चाहता। जिसको अच्छा पद, नाम, पैसा, रुतबा प्राप्त हो जाता है, वह उनसे दूर ही रहना चाहता है, जो उसकी प्रगति में बाधक हों या उन्हें आगे नहीं पीछे की ओर ले जाते हों। नए साहब के मिटिंग में न आने पर भोलाराम के साथ उन सभी कर्मचारियों की आशाओं पर पानी फिर जाता है, जो कई दिनों से अपने नए साहब से, जो उन्हीं की जाति का, उनका अपना है। अब वह उन्हें अपना नहीं लगता। भोला और कलिया का संवाद यहाँ कहानी में इस बात को प्रकट करती है–

> **भोला–"राजू की दरखास्त टाइप भी कराई थी, पर बड़े साहब ने मिलने से ही मना कर दिया।"**[94]

कलिया के मन में उलझी गुत्थी अचानक सुलझ गई थी। तत्काल वह बरस उठी

> **"पर तू तो कहता था कि वो म्हारी जात का है।" "हाँ राजू की माँ, मैंनें कहा था। फिर पत्थर और हीरे का भेद तो अब पता चला है। उसकी जात तो अलग है। साब लोगों की जात। उनसे म्हारा मेल कहाँ हो सके है भला.....?"**[95]

भोला के स्वर में हीनता टपकने लगी थी।

> **"धन्नो के बापू, सच्ची बात तो ये है कोई म्हारी जात का साब हो या दूसरी जात का, गरीब–गुरबों का कोई नई होत्ता ?"भोला को दिलासा देते हुए कलिया ने कहा।"**[96]

प्रस्तुत संवाद से स्पष्ट होता है, कि आज दलित उच्च अधिकारी अपने आपको इतना सिमटा हुआ बना लेता है, कि वह अपनों से ही दूर हो जाता है। जब दलितों की समस्या दलित अधिकारी ही नहीं सुनना चाहते, तब सवर्णों से कैसे अपेक्षा की जा सकती है ? लेखक ने कहानी में वर्तमान के सिमटे हुए दलित अधिकारियों की संकुचित वृत्ति को प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की है। संवाद छोटे होने पर भी चोटदार हैं। शहर में रहे दलितों की स्थिति को प्रकट किया गया है।

12. 'टूटता वहम'–डॉ. सुशीला टाकभौरे

डॉ. सुशीला टाकभौरे द्वारा रचित **'टूटता वहम'** कहानी में लेखिका ने शिक्षित सवर्ण वर्ग और दलित वर्ग के बीच अस्पृश्यता की खाई को उजागर किया है। लेखिका और उनके पति जब एक ही स्कूल में शिक्षक थे तब उन्हें सह शिक्षकों, विद्यार्थियों और आचार्य आदि से मान–सम्मान मिलता था, किन्तु व्यवस्थापक जब किसी से उनका परिचय करवाते, तब यह बताना नहीं भूलते कि ये दोनों एस. सी. हैं। लेखिका उनके ऐसे व्यवहार के पीछे का कारण नहीं समझ पाती, किन्तु ऐसी घटनाएँ उन्हें विचलित करती थीं। उनकी योग्यता उनकी जाति को पीछे छोड़ देती थी।

जब लेखिका कॉलेज में अध्यापक के पद पर कार्य करती हैं, तब भी उनके साथी अध्यापक ऊपरी तौर से तो उन्हें अपनी तरँह का समझते हैं, ऐसा ही व्यवहार करते हैं, किन्तु कोई उनके घर का खाना नहीं खाना चाहता। लेखिका जब अपने घर पर भोजन का कार्यक्रम रखती हैं, तो सभी सवर्ण महिलाएँ कुछ–न–कुछ बहाना बनाकर अनुपस्थिति रहती हैं और जो उपस्थित भी होती हैं, वह व्रत का बहाना बना लेती हैं।

लेखिका के पति के मित्र भी उन्हें अंधकार में रखते हैं। जमीन के एक अच्छे प्लाट को शर्मा जी के साथ लेने का उनका सपना, सपना ही रह जाता है। अस्पृश्यता मित्रता पर हावि हो जाती है।

इस प्रकार दलित कामकाजी महिला होने पर लेखिका को जीवन में कई ऐसे अनुभव होते हैं, जब उन्हें अपने साथी कर्मचारियों के साथ रहकर भी उनसे अलग होने को भाव आता है। इसके लिए ज़रुरी है, कि दलित वास्तविकता को नज़रअंदाज न करे। लेखिका के शब्दों में–

> **"जब तक हमारा वहम नहीं टूटेगा हम इस अन्याय को सहते रहेंगे!! इस तरह के भ्रमपूर्ण लोक–व्यवहार में अपने लिए मान सम्मान और अस्तित्व की पहचान खोजते रहेंगे!!!"**[97]

सवर्णों के मित्रता पूर्ण व्यवहार के पीछे के भ्रमजाल को, जब तक दलित नहीं समझ पाता, तब तक वह उसे अपना समझता है, किन्तु जैसे ही उसका यह भ्रमजाल टूटता है, उसका यह वहम टूट जाता है, कि उसके साथ काम करने वाले, मित्रता रखने वाले, उसके मन एवं हृदय के करीबी लोग उससे बहुत दूर एवं पराए हैं।

प्रस्तुत कहानी आधुनिक युग में शिक्षित वर्ग में सवर्णों की सोच एवं अस्पृश्यता केन्द्री विचारधारा के कलंक का शिकार हुए शिक्षित दलितों की मनोदशा और उनकी मानसिक स्थिति एवं दुविधा को चित्रित करती है। वतर्मान परिवेश में जातिगत भेदभाव का यह रुप नया है, किन्तु उसका मूल पुराना है।

12. 'डंक'–रत्नकुमार सांभरिया

'डंक' शीर्षक कहानी रत्नकुमार सांभरिया द्वारा रचित है, जिसमें पशुओं का व्यापार करने वाला दलित खेरा कम समय में दलितों में सबसे धनी बन जाता है। उसकी पत्नी मांगी सांवले रंग की गहनों से लदी रहती थी। पूरा गाँव उनके भाग्य की सराहना करता था। गाँव के ब्राह्मण को खेरा बिना ब्याज के बीस हजार रुपय छः महीने

के लिए देता है, बदले में रुपये न लौटाने पडे इसलिए ब्राह्मण अंधेरे में खेरा की कमर तोड़ देता है।

खेरा के साथ अन्याय हुआ था। उसे उपकार का बदला अपकार से मिला था। मांगी और खेरा का सुखी जीवन हमेशा के लिए दुःखी हो जाता है। खेरा अपाहिज हो जाता है, कोई दवाई उसे ठीक नहीं कर पाती। ब्राह्मण ने उसे ऐसा डंक मारा था, कि वह कभी उससे अपने पैसे माँगने नहीं आएगा। खेरा की आर्थिक स्थिति जैसे–जैसे खराब होती जाती है, वैसे–वैसे उसका शरीर गलता जाता है। उसने जिस ब्राह्मण की बुरे वक्त में मदद की थी, वही उसे मृत्यु शैया पर डाल देता है।

माँगी जब सतना ब्राह्मण से अपने रुपये माँगने जाती है, तो उसे रुपये तो नहीं मिलते बल्कि उसे अपमानित किया जाता है। वह कहता है–

> **"तू तो दौड़ी–दौड़ी चली आती है, ना उस दिन खेरा की कमर तोड़ दी थी। एक दिन तेरी भी कमर तोड़ दूँगा।"**[98]

धर्म के नाम पर लूटने वाला ब्राह्मण इतना बड़ा अधर्म करेगा यह खेरा और मांगी नहीं जानते थे। सच्चाई जानकर खेरा बदला लेने के लिए कसमसाता है, किन्तु एक अपाहिज क्या दंड उसे दे सकता था। खेरा स्वयं को इतना कष्ट देता है कि उसी रात को उसकी मृत्यु हो जाती है। खेरा तो सतना को दंड नहीं दे पाता, किन्तु उसके साथ हुए अन्याय का बदला लेने के लिए पूरा गाँव रात को सतना का घर घेर लेता है। कहानी में बीमार पति की दिन–रात सेवा करती माँगी का खुशहाल जीवन सतना बरबाद कर देता है। माँगी स्वयं अपने समक्ष अपने दोषी को देखती है उसे गालियाँ देती है, किन्तु गरीबी, लाचारी, पति की बीमारी उसे इसके अतिरिक्त कुछ करने का हौसला नहीं देती। दलितों पर अत्याचार करने वाला सतना गिरगिट की तरह रंग बदलता है। कहानी के अंत में दलितों द्वारा खेरा के साथ किए गये अन्याय के खिलाफ सतना की घेरा बंदी करना यह संकेत देता है, कि वे अब अन्याय के खिलाफ विद्रोह करेंगे, दोषी को बख्शा नहीं जाएगा। एकता में शक्ति होती है। 'डंक' यहाँ सांकेतिक अर्थ है शोषण का। कहानी का अंत इस बात को बताता है, कि अब भविष्य में कोई सतना किसी खेरा पर अत्याचार नहीं कर पाएगा।

2.7 परिवार में पिता की भूमिका

1.'भूख'– डॉ. सी.बी.भारती

डॉ. सी.बी.भारती की प्रस्तुत कहानी **'भूख'** एक आदिवासी समाज की दयनीय दशा, उनके शोषण और पेट की भूख के लिए होते उनके अधोपतन को चित्रित करती है। विकास के नाम पर जंगलों को काटकर गैर आदिवासियों ने गगनचुंबी अट्टालिकाएँ बना ली, जिसके परिणाम स्वरुप आदिवासी प्रजा जिन जंगलों के उत्पाद, पत्तियों, शहद आदि को बेचकर अपना गुजर करती थी, वे सभी जंगलों के कट जाने से पूरी तरह से नष्ट हो गए। धन की कमी और पेट की भूख ने उन्हें इतना विवश कर दिया कि स्त्रियाँ और युवतियाँ अपना शरीर बेचने को मजबूर हो गई।

ऐसी स्थिति में फिरतों की जवान बेटी किशनी बड़ी मुश्किालों के सहने पर भी सुरक्षित रहती है, अन्यथा शायद ही आदिवासी घरों में कोई युवती बची हो, जिसने अपना शरीर न बेचा हो। फिरतो ने बड़े अरमानों से पाल–पोसकर बडा किया था

किशनी को। सामाजिक दुष्प्रभावों के बावजूद अपने पेट की आग के लिए उसने पूत्री के स्वाभिमान को स्वाहा नहीं होने दिया–

> **"यद्यपि दूसरों के बिस्तर की शोभा बनना वहाँ के माहौल में बहुत साधारण–सी बात होती थी और मान–सम्मान, स्वाभिमान की परख का अवसर ही नहीं होता था, पेट की भूख मिटाने के आगे। भुइसर टोला की यह पट्टी गवाह थी, आदिवासियों के बेइन्तहा अन्तहीन शोषण की। पहले ठेकेदार, नेता, हाकिम, गैर आदिवासी अब नवधनाढ्य, व्यवसायी और अफसर, यही तो थे शोषण के अलंबरदार।"**[99]

अर्थात् आधुनिकरण और विकास के नाम पर जहाँ एक ओर गैरदलित समाज प्रगति के पंथ पर आगे बढ़ रहा है, वहाँ दूसरी और आदिवासी समाज की स्थिति में बदलाव भी हुआ है। बदलाव यह है कि उनका शोषण पहले गाँव के सवर्ण करते थे, अब शहर के नामी–गिरामी, उच्चपद पर आसीन लोग उनकी गरीबी का फायदा उठाते हैं।

किशनी का विवाह मल्हू से होता है। किशनी अपने पति के साथ अपने वैवाहिक जीवन में अत्यंत प्रसन्न थी। वह ऐसा पति चाहती थी, जो उसका सम्मान करे और उसे स्वाभिमान की जिंदगी दे । बचपन से ही किशनी जिस वातावरण में रही थी वहाँ छुआछूत, ऊँच–नीच का भेदभाव, अंधविश्वास, पढ़ाई–लिखाई का अभाव, गाली–गलौज, मार–पीट, आदि शोषण के सभी उपादान थे, जहाँ से मुक्ति दूर–दूर तक नज़र नहीं आती थी। मल्हू के साथ किशनी इन सभी शोषणों से मुक्ति का अनुभव करके अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझती है। अपने दो बच्चों के साथ किशनी सुखद वैवाहिक जीवन बिताते हुए किशनीको पाँच वर्ष बीत जाते हैं। इन वर्षों में वह अपने मायके एक भी बार नहीं गई थी।

मल्हू आदिवासी था, किंतु शहरी जीवन बिताने के कारण उसमें सभ्यता, सलीका और जीने की नई सोच आ गई थी। पढ़ना–लिखना भी सीख लिया था। उसे किशनी के मायके भुइसरटोले से घृणा आती थी, क्योंकि वहॉ का महौल बहुत ही गंदा था। गंदगी के उस वातावरण में उसका जी घबराता था। वह किशनी और अपने बच्चों को उस वातावरण से दूर रखना चाहता था। एक बार किशनी के जिद्द करने पर वह, उसे कुछ दिनों के लिए भुइसरटोला भेज देता है।

किशनी पाँच वर्षों बाद मॉ–बाप से मिलने के लिए आतुर थी। उसकी खुशी का ठिकाना न था। किशनी को गए जब दो सप्ताह गुजर जाते हैं, तो मल्हू को चिंता होती है। वह स्वयं किशनी को लेने भुइसरटोला पहुँच जाता है। वहाँ उसके माता–पिता से यह जानकर आश्चर्य होता है, कि किशनी वहॉ नहीं है। पड़ोसियों से जानकारी मिलती है, कि फिरतो ने पेट की भूख के कारण विवश होकर अपनी बेटी और उसके बच्चों को पाँच सौ रुपयों में एक गैरदलित को बेच दिया है। मल्हू को तो पूरी धरती घूमती नजर आने लगी। उसने ऐसा सोचा ही नहीं था, कि एक पिता की भूख उसे इतना विवश कर सकती है कि वह अपनी ही विवाहित पुत्री को बेच दे। फिरतो ने किशनी को विवाह से पूर्व बड़ी मुश्किलों से बचाया था, किन्तु बेटी के विवाह के पाँच वर्षों में वह इतना लाचार हो गया, कि उसके लिए बेटी की आबरु से भी बड़ी भूख हो गई। पेट की भूख ने उसके स्वाभिमान, मान–सम्मान की सोच को पीछे छोड़ दिया।

मल्हू बड़ी मुश्किल से अपने दोनों बच्चों को उस गैरदलित व्यक्ति से पाँच–सौ रुपये में छुड़ा लेता है किंतु किशनी को वह नहीं छोड़ता।
किशनी उसके लिए नौकरानी से लेकर रखैल तक सभी रुपों में उपयोग करने की वस्तु थी। पिता की भूख के लिए बेटी हमेशा–हमेशा के लिए दफन हो जाती है।

प्रस्तुत कहानी में आदिवासी प्रजा के एक ऐसे टोले का चित्रण है, जहाँ थोड़े से रुपयों के लिए बहू–बेटी को बेचना कोई बड़ी बात नहीं थी। सभी ऐसा करते थे, इसलिए किसी को बेइज्जती की कोई चिंता नहीं थी। मान–सम्मान, स्वाभिमान आदि बड़ी–बड़ी बातें उनकी पेट की भूख के समक्ष कुछ नहीं थी। गैरआदिवासी उनकी इस पेट की भूख को दूर करते थे और वे उन्हें अपनी बेटियों को बेचकर उनकी शरीर भूख को दूर करते थे। आदिवासियों की गरीबी, बेरोजगारी, भूखमरी, विवशता, अंधविश्वास को लेखक ने बखूबी चित्रित किया है। साथ ही विकास के नाम पर हो रहे दलितों के शोषण पर भी प्रकाश डाला है।

2. 'कफन'–रुपनारायण सोनकर

रुपनारायण सोनकर की **'कफन'** कहानी जीतलाल श्रीवास्तव जैसे शिक्षित दलित पिता की परेशानी को प्रस्तुत करती है। जीतलाल स्वयं बनारस के कॉलेज में प्रिंसिपल थे। पुत्र वैज्ञानिक था और पुत्री सलिला श्रीवास्तव अंग्रेजी विषय की प्रवक्ता। धन–दौलत, नाम, एश्वर्य, सुंदर शिक्षित पुत्री के लिए योग्य वर की तलाश में वे चिंतित थे। स्वयं दलित थे इसलिए दलितों में उनकी बेटी के योग्य वर मिलना मुश्किल हो रहा था।

संगम सक्सेना उच्च वर्ण के पंजाबी परिवार से थे। उनका पुत्र सतनाम सक्सैना कम्प्यूटर इंजीनियर था। पूरा परिवार दहेज का लालची था। पिता–पुत्र दोनों ही ऐसे परिवार से संबंध जोड़ना चाहते थे, जहाँ उन्हें करोड़ों रुपये दहेज में मिले। समाचार पत्र में शादी का इश्तहार देखकर जीतलाल श्रीवास्तव खुश हो जाते हैं, क्योंकि लड़का अच्छा था और जाति का कोई बंधन न रखा गया था। जीतलाल को धन की कमी नहीं थी, वह दहेज दे सकते थे। जब वे सक्सैना परिवार से मिलने जाते हैं, तो वे जान जाते हैं, कि यह परिवार बहुत ही लालची है। इस लालची पिता–पुत्र को वे अपने मेहतर होने की बात बता देते हैं, साथ ही अपनी अथाह सम्पत्ति का ब्यौरा भी दे देते हैं। सक्सैना धन के लोलुप थे सो करोडों रुपयों के लिए वे किसी भी जाति की लड़की को बहू बनाने को तैयार थे।

जीतलाल ने कुछ शर्तें सक्सैना पिता–पुत्र के समक्ष रखीं जैसे– आपके पुत्र को सूअर का गोश्त खाना पड़ेगा, पिता–पुत्र को एक दिन दूसरों के घरों की विष्टा साफ करने जाना होगा आदि। इतनी घृणित शर्त होने के बाद भी सक्सैना अधिक धन पाने के लिए शर्त स्वीकार लेते हैं। लेखक के अनुसार–

> **"लालच और स्वाभिमान की जंग जारी थी। लालच धन पाने के लिए कुछ भी करने को तैयार था। स्वाभिमान अपना सर उठाने के लिए सब कुछ लुटाने को तैयार था। एक धन को सर्वोपरि मान रहा था दूसरा सम्मान और प्रतिष्ठा को। एक तरफ लालच जितना नीचे जा सकता था जा रहा था, दूसरी तरफ सामाजिक प्रतिष्ठा और दलित अस्मिता की ऊँचाइयों को छू रही थी।"**[100]

जीतराम श्रीवास्तव दलित अस्मिता को ऊँचा उठाने के लिए ज़्यादा–से–ज़्यादा रुपये खर्च करने को तैयार थे। सवर्णों द्वारा वर्षों से जो शोषण, अपामन, अवहेलना दलितों ने सही है, आज सवर्णों से उसका बदला लेने का अच्छा अवसर हाथ में आया था। सक्सैना तो इतना लोभी था कि धन के लोभ में वह विष्टा खाने को भी तैयार था, किन्तु जीतलाल इसे अनुचित समझते हैं।

जीतराम की पुत्री सलिला ऐसे लोभी परिवार में विवाह नहीं करना चाहती। वह एक शिक्षित आत्मनिर्भर और स्वाभिमानी युवती थी, लालची सवर्ण से विवाह करके वह जीवनभर सुखी नहीं रह सकती थी। लेखक के अनुसार–

> **"भ्रण हत्याएँ संगम सक्सैना जैसे दहेज लोभियों की वजह से हो रही हैं। समाज में दहेज ने ऐसा विकराल रुप धारण कर लिया जो हर मानव को निगल रहा है। बिना दहेज के लड़कियों की शादियाँ नहीं हो रही हैं। लोग जमीन–जायदाद, घर द्वार बेचकर एवं अपनी गाढ़ी कमाई बैंकों से निकालकर दहेज लोभियों को दे रहे हैं और अपनी पुत्रियों की शादी कर रहे हैं।.....इस दहेज रुपी दानव से छुटकारा पाने के लिए बच्चियों को जन्म होने से पहले ही पेट के अंदर मार रहे हैं।"**[101]

दहेज एक सामाजिक दूषण है। चाहे दलित युवती हो या सवर्ण, दहेज लोभियों के कारण उसे एवं उसके परिवार को कई बार अपमानित होना पड़ता है, तो कई बार कर्ज़ में डूबना पड़ता है। स्त्री भ्रुण हत्या का सबसे बड़ा कारण दहेज है, ऐसा कहा जा सकता है। जीतलाल अपनी पुत्री का विवाह सतनाम सक्सैना से तो नहीं करते परंतु मिट्टी के गहनों पर सोने का रंग चढ़ाकर, संदूक में भरकर सक्सैना के घर भेजकर धन लोलुप परिवार को अच्छा सबक सिखाते हैं। जीतलाल द्वारा भेंट में भेजा गया सफेद कफन, वास्तव में संगम सक्सैना की मृत्यु के बाद कफ़न के लिए उपयोगी बनता है।

प्रस्तुत कहानी 'कफन' में लेखक ने दहेज समस्या, शिक्षित दलित पुत्री के लिए योग्य वर ने मिलने की समस्या, दलितों पर सवर्णों द्वारा अत्याचार की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। आज सभी दलित पहले की तरह अशिक्षित निःसहाय, दुर्बल, गरीब और दयनीय नहीं रहे। आज वे उच्च शिक्षा प्राप्त करके उच्च पदों पर कार्यरत हैं, साथ ही धन की कोई कमी नहीं है। वे अपने आपको सवर्णों से अधिक नहीं तो कम भी नहीं समझते हैं। सलिला जैसी सुंदर, शिक्षित युवती स्वयं सवर्ण सतनाम से विवाह करने से इन्कार कर देती है। यहाँ दलित शिक्षित युवतियों में आए बदलाव को प्रस्तुत किया गया है। कहानी में वर्तमान समय की समस्याओं एवं वातावरण को चित्रित किया गया है। भाषा चित्रोपम एवं पात्रोचित है, कहानीकार का उद्देश्य स्पष्ट है कि समाज से दहेज जैसे दूषण को दूर करना अत्यंत आवश्यक है, वरना स्त्री भ्रुण हत्या को रोकना मुश्किल होगा। कहानी का शीर्षक 'कफ़न' दहेज लोभी संगम सक्सैना जैसे व्यक्ति के कर्मों के आधार पर मिलने वाले फल की ओर संकेत करता है।

3. 'अंधड़'– ओमप्रकाश वाल्मीकि

'अंधड़' कहानी कि नायिका सविता एक सुशिक्षित दलित स्त्री है। सविता के चाचा दीपचंद ने उसे पढ़ाया–लिखाया था। स्वयं दरिद्रता, गंदगी में जीकर दीपचंद ने यह जाना था, कि यदि समय के साथ चलना है, मान–सम्मान पाना है, तो पढ़ाई–लिखाई बहुत ज़रुरी है। शहर में नगरपालिका में सफाई कर्मचारी होते हुए भी

उन्होंने उस समय लड़कियों को स्कूल भेजा, जबकि समाज में लड़कियों को स्कूल भेजने के नाम पर लोग नाक–भौंह सिकोडते थे। वीना, सविता की चचेरी बहन थी। दीपचंद ने अपने मित्र के बेटे सुक्कड़, जो कि पढ़ाई में बहुत होशियार था उसे अपने घर चार वर्ष रख कर कॉलेज की पढ़ाई करवाई थी।

सुक्कड़ बी.एस.सी. फिर एम.एस.सी करके पूना के एक प्रसिद्ध शोध संस्थान में नौकरी करता है। सुक्कड़ एस.सी. होने के कारण बचपन से ही हीन–बोध से मुक्त नहीं था। उसके सहपाठी उससे अलग–थलग रहते थे। यही बात कॉलेज में भी सब जानते थे, कि उनका परिवार सुअर का गोश्त बेचता है। सुक्कड़ को अच्छे छात्र के रुप में ख्याति ज़रुर मिली, किंतु जिस लोकप्रियता का वह हकदार था, एस.सी.होने के कारण उससे हमेशा वंचित रहा।

अच्छी जगह नौकरी मिल जाने पर दीपचंद की भतीजी सविता से उनका विवाह हो जाता है। उनके दो बच्चे थे पिंकी और स्वीट। बच्चों के बड़े होने तक के समय में उनके जीवन में बहुत बदलाव आया। एक ओर उनकी तरक्की हुई दूसरी और उन्होंने अपना नाम सुक्कड़ से एस.लाल लिखना शुरु कर दिया। साथ ही अपने सारे नाते–रिश्तेदारों से कन्नी काटने निर्णय ले लिया। यह निर्णय उन्होंने अचानक नहीं लिया था, बल्कि स्कूल, कॉलज और फिर नौकरी तक आते–आते उन्होंने जो कुछ भी भोगा, महसूस किया उसी का परिणाम था। मि.लाल नहीं चाहते थे कि जो मान–सम्मान वर्षों बाद लोगों से उन्हें मिल रहा है, एस.सी.की बात जान लेने पर उनसे छीन लिया जाए।

सविता अपने पति मि.लाल में आए परिवर्तनों को हीन–भावना का प्रतीक मानती थी, जो प्रतिक्रिया के रुप में उपजे थे। सविता पढ़ी–लिखी समझदार स्त्री थी। वह जानती थी कि अपने ही परिवार के लोगों से कतराना या उनकी अवहेलना करना कतई सही नहीं है। शिक्षित होकर भी अपने अनपढ़ परिवार वालों का सहारा या मार्गदर्शक बनने की जगह उन्हें संस्कारहीन, प्रगति में बाधक समझना सविता के मन को विचलित कर देता है। मि.लाल के तर्कों के समक्ष सविता कमजोर नहीं पडती। वह नहीं चाहती कि अपने रिश्तेदारों के साथ अजनबियों जैसा व्यवहार किया जाए, या अपनी जात को छिपाकर हाई–सोसायटी के लोगों के बीच मान–सम्मान पाने का प्रयास किया जाए। सविता विवाह के बाद अपने चाचा दीपचंद से संबंध जोड़े रखना चाहती थी, अपने चाचा दीपचंद के घर जाना चाहती थी, तब मि.लाल उस पर बिफर पड़ते हैं और कहते हैं–

> **"मैं जिस गंदगी से तुम्हें बाहर निकालना चाहता हूँ.....तुम लौट–लौटकर उसी में जाना चाहती हो। तुम वहाँ जाओगी तो वे भी यहाँ आएँगे। मैं नहीं चाहता, यहाँ लोगों को पता चले कि हम 'शेड़यूल्ड कास्ट' हैं। जिस दिन लोग ये जान जाएँगे, यह मान–सम्मान सब घृणा–द्वेष में बदल जाएगा।"**[102]

सविता की दृष्टि में विवाह के बाद वह भले ही एक नई दुनिया में आ गई थी, किन्तु इस नई दुनिया की चका–चौंध में वह अपने उस चाचा को नहीं भूली थी, जिन्होंने स्वयं अंधेरे में रहकर दूसरों को रोशनी दी थी। मि.लाल सविता के ऐसे विचारों से बिल्कुल विपरीत सोचते थे। वे अपनी जात को छिपाए रखने के लिए लोगों की घृणा से बचने के लिए कोई भी कींमत चुकाने को तैयार थे। चाहे वह अपने रिश्तेदार हों, पुराने परिचित

हों या सविता के ही परिवार वाले ही क्यों नहीं। इसीलिए उन्होंने अपने बच्चों से भी अपनी जात को छिपाए रखा, साथ ही अपने रिश्तेदारों से कभी नहीं मिलवाया।

मि.लाल की इस अंधी दौड़ में अवरोध तब पडता है जब उन्हें यह पता चलता है कि जिस व्यक्ति ने उन्हें वैज्ञानिक बनने में सबसे ज्यादा योगदान दिया था, ऐसे दीपचंद जी का अवसान हो गया है। मि.लाल को वर्षों के बाद यह एहसास हो जाता है कि उन्होंने अपने–रिश्तेदारों से संबध तोड़कर बहुत बड़ी गलती की है। अपनी गलती को सुधारने के लिए वे स्वयं दीपचंद जी के घर जाना चाहते हैं। सविता भी अपने परिवार से मिलना चाहती है किंतु वह नहीं जाती। सविता के पास उनके सवालों का कोई जवाब नहीं था, कि वह इतने वर्षों कहाँ थी ? अपने पति के अहम के समक्ष उसकी भावनाएँ निष्प्राण हो चुकी थीं।

मि.लाल के साथ उनकी बेटी पिंकी जिद्द करके दीपचंदजी के घर जाती है। वहाँ पहुँचकर पिंकी ऐसा महसूस करती है जैसे वह किसी आदिम जगह पर आ गई हो। वहाँ के लोग, रहन–सहन भाषा, तौर–तरीका,खान–पान, वातावरण आदि देखकर उसका जी घबराने लगा। अपने पिता से वह कहती है कि ये सब लोग बहुत ही गंदे और असभ्य हैं। जब मि.लाल पिंकी को वो वास्तविकता बताते हैं, जो उन्होंने इतने वर्षों तक उससे छिपाकर रखी थी। सारी सच्चाई जानकर पिंकी अपने शब्दों के लिए उनसे माफी माँगती है। अपने पिता से वह कहती है–

> **"डैड, किसी भी बदलाव के लिए भागना तो समाधान नहीं होता। भागकर तो हम उसे बढ़ा देते हैं।"**[103]

पिंकी एक शिक्षित युवती है। वह नए जमाने की सोच–विचार रखती है। अपने पिता की गलतियों को वह दोहराना नहीं चाहती। उसके विचार से यदि वह एस. सी. है तो एस.सी. बनकर वह अपने जीवन या समाज में बदलवा या सुधार लाने का प्रयास कर सकती है। यदि उसने अपनी पहचान छुपाई तो बदलाव या सुधार करना और मुश्किल हो जाएगा। अंत में मि.लाल को अपनी गलती का पछतावा होता है।

3. 'घाटे का सौदा'–सूरजपाल चौहान

सूरजपाल चौहान द्वारा रचित कहानी **'घाटे का सौदा'** कहानी में एक ऐसे पिता का चित्रण किया गया है, जो अपनी जाति छिपाकर अपनी बेटी का विवाह सवर्ण जाति के लड़के के साथ कर देता है। लल्लनपुर गाँव की बस्ती का डोरीलाल शिक्षा प्राप्त करके उच्च पदाधिकारी बन जाता है। अपनी जाति के कारण डोरीलाल स्कूल में विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के छुआछुत से पीड़ित होता है। उसके भीतर गहरे तक हीन भावना भर दी जाती है, जिससे वह कभी छुटकारा नहीं पा सका।

यही कारण था कि अच्छी नौकरी मिलने पर वह अपनी पत्नी एवं दो बच्चों के साथ अच्छी सोसायटी में बंगला, गाड़ी, सुविधाओं के बीच रहकर अपनी ही जाति एवं रिश्तेदारों से संबंध तोड़ लेता है। पत्नी आनंदी उसे अपनी जाति छिपाने एवं सवर्ण जाति का बताने की बात का विरोध करती है एवं सच्चाई को स्वीकार करती है, किन्तु डोरीलाल सच्चाई बताकर अपने मान–सम्मान एवं सामाजिक प्रतिष्ठा को खोना नहीं चाहता। बेटी का विवाह भी वह अपने पड़ोसी मित्र के पुत्र के साथ जाति छिपाकर कर देता है।

रजनी एक अध्यापिका के पद पर कार्य करने वाली युवती थी। वह पिता के ऐसे विचारों से परेशान तो होती है, किन्तु उन्हें बदल पाना उसे संभव नहीं लगता। रजनी का ससुर सोमनाथ अपने साथ धोखे की बात जानकर पुत्र अनिल से कहता है–

> **"बेटा, आज ही रजनी को उसके घर भेज दो और सदा–सदा के लिए संबंध तोड़ लो। भूल जाओ इसे , यह नीच बाप की बेटी है। मैं इस के बाप पर मानहानि और धोखाधड़ी का मुकदमा दायर करुँगा।"**[104]

रजनी को पिता की गलती के कारण उसे नीचा देखना पड़ता है और सच छिपाने के कारण लज्जित होना पड़ता है। अनिल रजनी का साथ देता है किन्तु सोमनाथ को मनाना उसके लिए सरल नहीं था। वह पिता से अलग पत्नी के साथ रहने लगता है। डोरीलाल भी लोगों के तानों से बचने के लिए अपनी कोठी घाटे के सौदे में करके रातों–रात वहाँ से भाग जाता है।

प्रस्तुत कहानी में डोरीलाल के एक झूठ से कई लोग आहत होते हैं। बेटी रजनी का वैवाहिक जीवन टूटते–टूटते बचता है। किन्तु रजनी जैसी शिक्षित, कामकाजी युवती पिता के झूठ का विरोध कर सकती थी। अनिल को सच्चाई पहले ही बताकर उसके विचारों को जान सकती थी। दलित शिक्षित युवती अपने कर्त्तव्य एवं अधिकारों को समझते हुए अपने वैवाहिक जीवन की शुरुआत ही झूठ की बुनियाद पर करे, फिर पिता को दोष दे यह उचित नहीं लगता। आज की दलित युवतियों को अपने परिवार की प्रगति के लिए झूठ का सहारा लेने की आवश्यता नहीं है।

कहानी का शीर्षक 'घाटे का सौदा' में डोरीलाल ऊर्फ डी. लाल को दोनों सौदे घाटे में पड़ते है। बेटी का विवाह और कोठी को घाटे में बेचना दोनों में नुकसान उसी को होता है। कहानी में ग्रामीण एवं शहरी वातावरण में दलितों के प्रति सवर्णों की मानसिकता को प्रस्तुत किया गया है। साथ ही अनिल जैसे शिक्षित सवर्ण युवक द्वारा रजनी का साथ न छोड़ने की बात से नई पीढ़ी में आए बदलाव को भी प्रस्तुत किया है।

2.8.दलित नारी का विद्रोह

1.'आतंक'–राजेश कुमार बौद्ध

प्रस्तुत कहानी **'आतंक'** दलित उत्पीड़न एवं दलित नारी के विद्रोह की कहानी है। अत्याचार और शोषण को दलित नारी वर्षो से सहती आ रही है। सवर्ण समाज दलित नारी के प्रति कितना कठोर हो सकता है, यह इस कहानी में देखा जा सकता है। प्रस्तुत कहानी में राखी नामक दलित स्त्री नव वर्ष का बेटा ठाकुर के आठ वर्षीय बेटे की पीटाई कर देता है। क्योंकि ठाकुर के बेटे ने उसे गाली दी और उसके कपड़े फाड़ दिए। आपस में वे दोनों लड़ पड़े। शाम होने तक यह बात पूरे ठाकुर समाज में फैल गई। एक दलित के बेटे ने ठाकुर के बेटे पर हाथ उठाया, यह सुनकर बिरादरी के लोगों में खलबली मच गयी। बिरादरी के नाम पर सबके मन में आक्रोश पैदा हो गया।

वर्षों से सवर्ण समाज दलितों का शोषण करता आया है। दलित उनके अत्याचार को खामोशी से सहते आए हैं। उनसे लड़ने की किसी में हिम्मत नहीं। उनके विरोध में एक भी शब्द वे बोल सकें, ऐसा साहस किसी दलित में नहीं। परिणामस्वरुप सवर्णों को इससे और बल मिलने लगा। वे दलित पुरुष के साथ–साथ दलित स्त्री पर

भी अत्याचार करने लगे। राखी के साथ वही होता है। वह अपने बेटे को इंसाफ दिलाना चाहती है। गलती ठाकुर के बेटे ने की थी, किंतु ठाकुर अपने बेटे की गलती न स्वीकार करके सारा दोष राखी और उसके बेटे पर लगाते हैं। ठाकुर राखी को घसीटकर घर से बाहर लाते हैं। उसे मार–पीटकर उसे उसके घर में बंद कर देते हैं। दो दिन तक उसे खाना–पानी नहीं दिया जाता। राखी के रिश्तेदार इस अत्याचार को देखकर दुःखी होते हैं। किंतु इन दबंग लोगों से भिड़ने की किसी में हिम्मत नहीं थी। गाँव में ठाकुरों का इतना दबदबा था कि गाँव का कोई भी व्याक्ति उनके विरोध में एक शब्द भी नहीं बोल सकता था।

दलितों की खामोशी से ठाकुरों को और बल मिलता है। वे राखी को रात के समय घसीटकर अपने घर ले जाते हैं और उसका बलात्कार करते हैं। सुबह फिर उसे घर लाकर कैद कर देते हैं। जिस किसी व्यक्ति ने राखी को खाना–पानी देने की कोशिश की उसे वे पीटते हैं। राखी का देवर बड़ी मुश्किल से थाने में इस घटना की जानकारी देता है। थाना इन्चार्ज और सब इन्सपेक्टर घटनास्थल पर पहुँचते हैं और ठाकुर परिवार को समझा–बुझाकर ताला खुलवा देते हैं। ठाकुर एक धनवान व्यक्ति था, इसलिए थानेदार भी उसी का पक्ष लेता है। गरीब, शोषित राखी की लाचारी और दयनीयता देखकर भी उसे इंसाफ नहीं दिलाता। पुलिस की इस तरह की कमजोरी का भरपूर फायदा ठाकुर उठाता है। वह राखी को निर्वस्त्र करके गाँव में उसे जिन्दा जला देता है। राखी की चीख उसकी देवरानी विमला सुनती है। वह उसे बचाने के लिए लोगों की मदद माँगती है। लेकिन कोई आए उससे पहले राखी का शरीर जल चुका था।

थाना प्रभारी यह सूचना पाकर भी तुरंत नहीं आता। वह तो ठाकुर के साथ उस स्थल पर पहुँचता है। जब कातिल पुलिस के साथ खड़ा हो, तो भला इंसाफ मिलने की आशा कहॉ रह जाती है। पुलिस, ठाकुर को बचाने के लिए पंचनामे करने लगती है। राखी की देवरानी विमला की सहनशक्ति खत्म हो जाती है। वह घायल शेरनी की तरह पुलिस के समक्ष आकर उन्हें रोकती है। उसकी हट के समक्ष पुलिस को झुकना पड़ता है और लाश पोस्टमार्टम के लिए भेज दी जाती है। एक माँ को बेटे की सजा इतनी भयानक मिलेगी इसकी किसीने कल्पना भी नहीं की थी।

ठाकुर की दरंदगी यहाँ पर खत्म नहीं होती। राखी को जिंदा जलाकर वह दूसरे दिन राखी की देवरानी के पति को मार–पीटकर अधमरा कर देता है। एक बार फिर एक दलित स्त्री विमला को निर्वस्त्र करके, सिर के बाल पकडकर पूरे गॉव में घुमाया जाता है। ठाकुर दलितों के बीच ऐसा घृणित कार्य करके यह सिद्ध करना चाहता है कि, जो व्यक्ति उनके समक्ष आवाज उठाएगा उसकी दुर्गती ऐसी ही होगी, जैसी राखी और विमला की हुई है।

विमला, राखी की तरह कमजोर नहीं थी। उसमें साहस की कमी नहीं थी। अपनी हिम्मत के कारण वह अचानक ठाकुर चमनसिंह का गला खूब कसकर पकड लेती है। जब बोडीगार्ड उसे बचाने जाता है, तो उसकी रिवाल्वर छीनकर सात लोगों पर गोली चला देती है। राखी नारी के अबला रुप का परिचय देती है, तो बिमला नारी के सबला रुप का परिचय देती है। बिमला अपने अपमान का बदला उन्हें मृत्युदंड देकर स्वयं ले लेती है। यदि उसे कानून पर भरोसा होता तो वह यह कार्य कभी न करती, किन्तु हमारे रक्षक ही जब भक्षक बन गए हों तब बिमला जैसी स्त्री को कौन–इंसाफ दिलाता। बिमला सोचती है कि किसी ने ठीक ही कहा था कि–

"जुल्म करने वाले से जुल्म सहने वाला ज्यादा गुनाहगार होता है।"[105]

विमला जेल में रहकर भी खुश थी। वह इसलिए खुश थी, क्योंकि उसने सिद्ध कर दिया था, कि हर नारी अबला नहीं होती बल्कि वह हमेशा सबला थी, है और रहेगी।

2. 'अन्तिम बयान'– कुसुम वियोगी

कुसुम वियोगी की प्रस्ततु कहानी **'अंतिम बयान'** बी.केशरशिवम की 'मंकोडो' और कुसुम मेधववाल की 'अंगारा' कहानी से समानता रखती है। तीनों कहानी में दलित स्त्री सवर्ण पुरुष के अत्याचार के समक्ष समर्पण न करके उसका विरोध करती है, साथ ही वह किसी अन्य दलित स्त्री पर अत्याचार न कर सके इसके लिए उससे पुरुष होने का अधिकार छीन लेती है।

कहानी नायिका अतरो गाँव के दलितों की सभी युवतियों में सबसे अधिक सुंदर, समझदार और निडर थी। गाँव के प्रधान का एकमात्र पुत्र राजेन्द्र उसके रुप पर मर–मिटा था। गाँव की युवतियों को छेड़ना, अपने प्रेमजाल में उसे फँसाना उसके लिए आम बात थी। अतरो को भी वह फँसाना चाहता था, किंतु अतरो उससे घृणा करती थी। उसकी हरकतों को देखकर अतरो अपनी मुहबोली भाभी कमला से कहती है–

> **"भाभी ! अगर उसने मुझे कुछ कह दिया तो फिर देख दराती से गन्ने–सा कतरकर रख दूँगी हराम खोर को ! गाँववाले देखते रह जाएँगे।"**[106]

अतरो उन युवतियों में से नहीं थी, जो ठाकुरों के डर से समर्पण कर दे। जितनी स्वतंत्रता सवर्ण स्त्री को मिलती है, जीने के लिए उतनी ही स्वतंत्रता दलित स्त्री को भी मिलनी चाहिए। वह तय कर लेती है, कि यदि राजेन्द्र उसके नज़दीक आया तो वह उसे ऐसा दण्ड देगी, जिससे वह मुँह छिपाता फिरेगा।

राजेन्द्र कामुकता का भेड़िया था। वह अतरो को पाने के लिए छटपटाने लगा। अतरो निडर थी, इसलिए वह राजेन्द्र से दूर न भागकर उसका सामना करने को तैयार थी। एक दिन कमला और भरतरी के साथ घर जाती हुई अतरो को राजेन्द्र बीच में रोक लेता है। भाभी को घर जाने के लिए कहकर अतरो से अकेले में मिलना चाहता है। अतरो भी आज इस कहानी का अंत करने के लिए तैयार हो जाती है। अकेलेपन का फायदा उठाकर राजेन्द्र जैसे ही उसके पास आता है तभी अतरो उससे पुरुष होने का अधिकार छीन लेती है। वह किसी स्त्री का सुख प्राप्त न कर सके ऐसा दंड उसे देती है।

राजेन्द्र के पिता गाँव के प्रधान थे। गरीबों का धन लूटकर खूब धन जमा किया था। इकलौता बेटा राजेन्द्र उसका अकेला मालिक था अपने कूकर्मों के कारण राजेन्द्र का जीवन अब जीने लायक नहीं रह जाता। वह किसी को क्या मुँह दिखलाएगा। उसके माता–पिता की उम्मीदों पर उसने पानी फेर दिया था, इसलिए वह कुँए में कूदकर आत्महत्या कर लेता है।

पोस्टमार्टम के बाद लाश गॉव के लोगों को थमा दी गई। दारोगा रिपोर्ट देखकर दंग थे। यह पता चल गया था, कि यह हत्या भी हो सकती है। पूछ–परछ करने के बाद शक की सुई गाँव पर और उसमें भी अतरो पर जाकर रुक गई। अतरो

का बयान लेने के लिए उसे थाने ले जाने को दारोगा तैयार था, किंतु गाँव वाले नहीं। गाँव वाले चाहते थे, कि जो बयान लिया जाए, वह सबके सामने लिया जाए।

अतरो अब भी घबराती नहीं है। वह सिपाही से कहती है, कि मैं बयान देने को तैयार हूँ, जरा रुको। दौड़कर वह कागज का बंडल लेकर आती है और भीड़ के बीच आकर कहती है–

> **"गाँववालों, सुनो। दारोगा को बयान चाहिए तो सुनो मेरा बयान। अतरो ने कागज के बंडल में से निकालकर राजेन्द्र का कटा हुआ पुरुषत्व लहरा दिया।"**[107]

यहाँ अतरो का अंतिम बयान दलित स्त्री के शोषण के प्रति उसके विद्रोह को प्रस्तुत करता है। जिस दलित समाज में सदियों से सवर्ण पुरुष दलित स्त्रियों का शारीरिक शोषण करता आया है और दलित स्त्रियाँ न चाहते हुए भी गरीबी और अत्याचार के डर से उस शोषण के सहती आई है। ऐसी स्थिति में अतरो की निडरता और उस अत्याचार के विरुद्ध प्रतिकार एक नया साहस कहा जा सकता है।

कहानी में जिस ग्रामीण वातावरण का वर्णन है, भाषा उसके अनुरुप प्रयुक्त की गई है। कहानी की नायिका अतरो दलित शोषित स्त्रियों के लिए, शोषण के खिलाफ मुक्ति प्राप्त करने का एक ऐसा मार्ग चुनती है, जिससे उसके साथ–साथ अन्य स्त्रियाँ भी मुक्त हो सकें।

3. 'जंगल में आग'– गौरीशंकर नागदंश

'जंगल में आग' कहानी में फुलतोड़नी नाम की दलित युवती के जीवन–संघर्ष की प्रस्तुती की गई है। पनचक्की गॉव की सुंदर, आकर्षक दिखने वाली फुलतोड़नी अपनी माँ के साथ एक मिल में काम करती थी। उस मिल में व्यापार करने वाला विलासी सिंह दल के व्यापार के साथ–साथ सुंदर युवतियों और स्त्रियों का भी मोल–भाव करके अपनी भूख शांत करता था। कई युवतियों को अपने जाल में फँसानेवाला विलासी सिंह का दिल फुलतोडनी पर इस कदर आता है, कि वह उससे विवाह कर लेता है।

दलित फुलतोड़नी विलासी सिंह जैसे नामी, धनवान, रुपवान धाकड़ पुरुष का साथ पाकर अपने को भाग्यशाली समझती है। विलासी सिंह की माँ को इस विवाह से एतराज नहीं होता, किंतु उसके पिता धरीक्षण सिंह फुलतोड़नी की नीची जाति से खुश नहीं होते। एक ठाकुर होकर किसी दलित युवती से विवाह करे इससे, उनकी मान–हानि होने का डर था।

गॉव में विजयादशमी के पर्व पर रौतहट बाजार में खेले जाने छर्रा–काठी में प्रतिद्वन्द्वी की तलवार विलासी सिंह के पेट में धँस गई। फुलतोडनी का सुहाग उजड़ गया। परिवार वाले विलासी सिंह की मृत्यु का दोषी फुलतोड़नी को मानने लगे। उसे डायन घोषित कर दिया गया। मजबूर होकर वह अपने गाँव पनचक्की लौट आई। गाँव वाले फुलतोड़नी के खिलाफ थे। उनकी दृष्टि में उसने पाप किया था। उसकी वजह से गाँव की अन्य युवतियों को सह मिलेगा।

उस गाँव में प्रेम विवाह करने वाले व्यक्ति को, या समाज के नियमों के विरुद्ध जाने वाले को, कई तरह क दंड दिए जाते थे। जैसे– गाँव से निकाल देना, उसे जात–भात से काट देना, कदम्ब के पेड़ से बाँधकर इक्यावन बाँस की छडी से मारना

आदि। आखिर फुलतोड़नी के माता–पिता को यह सज़ा सुनाई गई कि, उन्हें पूरे समाज को भोजन खिलाना होगा। इसके बाद पंचों ने फुलतोड़नी को क्वाँरी मान लिया। जिस समाज से फुलतोड़नी का ताल्लुक था, उसमें अधिकतर पुरुष शराब पीते थे, जुआ खेलते थे और मार–पीट करते थे। अंधविश्वास, शिक्षा का अभाव और धन की कमी पूरे समाज के लिए एक समस्या थी, किंतु इससे बाहर आने के मार्ग को कोई तलाशता न था।

फुलतोड़नी का परिचय प्रौढ़ शिक्षा योजना के तहत पनचक्की स्कूल में पढ़ाने आए प्रौढ़ निर्मल लाल से होता है। निर्मल लाल उसे पढ़ना–लिखना सिखाते हैं, साथ ही उसके रुप पर मुग्ध भी होते हैं। निर्मल लाल फुलतोड़नी को पनचक्की की सुरक्षित विधान सभा सीट के लिए तैयार करते हैं। अनुसूचित जाति की महिला की सीट यदि उसे मिल जाए, तो निर्मल लाल को अपने जीवन की दो कमी पहली स्त्री सुख दूसरा धन का सुख दोनों मिल सकते थे। निर्मल लाल फुलतोडनी को लालच देकर पटना ले आता है, जहॉ उसे बेहोशी की दवा खिलाकर अपने जीवन की एक कमी पूरी करता है।

निर्मल लाल धन प्राप्ति के लिए कुछ भी कर सकता था, किंतु फुलतोड़नी निर्मल लाल को पति के रुप में स्वीकार कर लेती है। फुलतोड़नी के माता–पिता की नजरों में निर्मल लाल बहुत ही ऊँचा स्थान पा लेता है। निर्मल लाल अब फुलतोड़नी को मंत्री बनाना चाहता है, जिसके लिए वह मुख्यमंत्री के अन्य मंत्री जगन लाल को खुश करने का प्रयास करता है।

बसमतिया नाम की एक युवती, पुरुषों के असंख्य जंगल से गुजरने वाली फुलतोड़नी से कई दृष्टिकोण से साम्यता रखती थी। बसमतिया को फुलतोड़नी की सुरक्षा में रखा गया था। विधायक फुलतोडनी उसे अपनी छोटी बहन की तरह मानने लगी थी। वह एक रात मीटिंग से लौटी तब पति निर्मल लाल सोफे पर सो रहा था, किंतु दूसरे कमरे में जगन लाल बसमतिया को अपना शिकार बनाने के लिए प्रयास कर रहा था।

फुलतोड़नी ने अपने जीवन में कई कड़वे अनुभव किए थे। किंतु अपनी ही तरह वह किसी अन्य युवती की लाज लुटने नहीं देख सकती थी। फुलतोड़नी जगन लाल की हत्या कर देती है। अखबारों में यह खबर छपती है कि–

> **"जेल के महिला वार्ड में फुलतोड़नी देवी की उटपटाँग हरकतों से उन्हें पागल भी करार कर दिया जा सकता है। मसलन वे जेल में बार–बार एक वाक्य दुहराती जा रही है– मैंनें जंगल में आग लगा दी है, मैंनें जंगल में..... ।"**[108]

यहाँ एक स्त्री दूसरी स्त्री की लाज बचाती है। फुलतोड़नी का पागल हो जाना कहीं–न–कहीं पुरुष समाज द्वारा दिया जाने वाला धोखा, छल, और आघात ही है। जंगल में आग एक सांकेतिक शब्द के माध्यम से कहानी कार पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर किए जाने वाले अत्याचार और उसके खिलाफ एक स्त्री द्वारा किया जाने वाला विद्रोह रुप विरोध को प्रस्तुत करते हैं। फुलतोडनी द्वारा दोहराए जानेवाले इस शब्द को उसका प्रतिकार कहा जा सकता है।

4. 'अंगारा'–कुसुम मेघवाल

कुसुम मेघवाल की **'अंगारा'** कहानी कुसुम वियोगी की 'अंतिम बयान' और गुजराती कहानीकार बी.केशरशिवम् की 'मंकोडा' कहानी से साम्यता रखती है। तीनों कहानियों में दलित स्त्री अपने पर अत्याचार करने वाले सवर्ण पुरुष को स्वयं दंड देती है। यह दंड भी ऐसा होता है जिससे वह किसी और स्त्री का जीवन बर्बाद न कर सके। दलित स्त्रियों में ऐसी बहुत ही कम स्त्रियाँ होंगी जो इतना साहस कर सके, क्योंकि अधिकतर स्त्रियाँ अपना शोषण करने वाले पुरुष से डर जाती हैं और स्वयं आत्महत्या कर लेती है। इन कहानियों में दलित स्त्रियों को निडर, साहसी और अपने पर अत्याचार करने वाले को दंड देने की क्षमता रखने वाली विद्रोही स्त्री के रुप में देखा जा सकता है।

'अंगारा' कहानी में हरखू चमार की बेटी जमना का बलात्कार गाँव का ठाकुर सुमेर सिंह और उसका चाचा नत्थू सिंह करता है। गाँव में ऐसी घटना पहली बार नहीं घटी है। ठाकुर दलितों की इज्जत को यूँ ही मिट्टी में मिलाते आए हैं। गरीब, अनपढ़, लाचार दलित परिवार उनके समक्ष आवाज़ ऊँची नहीं कर सकते, क्योंकि यदि ऐसा किया तो वे उनके घर जला देते हैं, दाने–दाने के लिए तरसाते हैं, गाँव से भागने के लिए विवश कर देते हैं। जमना का भाई हीरा इस घटना से बहुत आहत होता है। उसका खून खौलने लगता है। वह अपनी बहन के अपराधियों को सज़ा देने के लिए दृढ़ संकल्प करते हुए अपनी माँ को वचन देता है कि–

> **"माँ.....मैं तुम्हारी कसम खाकर कहता हूँ, जब तक जमना की इज्जत लूटनेवालों से बदला नहीं ले लूगाँ, तब तक चैन से नहीं बैठूँगा....तुम्हारी कसम माँ, चैन से नहीं बैठूँगा।"**[109]

दलितों की पुरानी पीढ़ी के लोग आज भी ठाकुरों के अत्याचार से डरकर उनके समक्ष आवाज़ नहीं उठाते, किंतु युवा हीरा इस तरह का अत्याचार कतई सहन करने को तैयार नहीं है। अपमान सहकर चुप बैठ जाना उसकी दृष्टि में कायरता है। वह अपनी बहन जमना को हिम्मत देता है और माता–पिता को भी न्याय दिलाने का वादा करता है।

हीरा थाने में जाकर रिपोर्ट लिखवाता है ठाकुर के खिलाफ, किन्तु इंसाफ न मिलने पर उसे पता चलता है, कि सिपाही और ठाकुर दलितों को कभी इंसाफ नहीं मिलने देंगे। ठाकुरों के पास धन की कमी नहीं और सिपाही उसी की सुनते हैं, जो उन्हें खुश कर दे।

जमना हीरा को बताती है कि उसने ठाकुरों से अपनी लाज बचाने के लिए अपने अछूत होने की बात कही साथ ही कहती है कि–

> **"भैया मैंनें उनसे काफी अनुनय–विनय की कि आप लोग दिन के उजाले में हमारी परछाईं से भी परहेज़ करते हैं। हमें छूते ही आप अपवित्र हो जाते हैं, किन्तु रात के अंधेरे में हमारा पसीना और होंठो से.....पर भी आप अपवित्र नहीं होते ? ऐसे लिपट जाते हैं, जैसे आप और हम में कोई फर्क नहीं है ? आपकी छूत– छात और जातपात कहाँ चली गई ? इस पर उन्होंने मुझे धिक्कारते हुए कहा, 'जबान चलाती है हरामजादी। तुझे पता नहीं, अब तू हमारे चंगुल से बचकर जा भी नहीं सकती कहीं। हमारा**

जब तक जी चाहेगा, तब तक तेरा भोग करेंगे और जब जी भर जाएगा मारकर यहीं जंगल में फेंक देंगे, चील–कौए खा जाएँगे।"[110]

जमना का अछूत होना ठाकुरों के लिए दिन के उजाले में, लोगों की मौजूदगी में एक समस्या थी, किंतु रात के अंधेरे में, अकेलेपन में उसकी अस्पृश्यता कोई मायने नहीं रखती। उन्हें तो मात्र स्त्री का शरीर चाहिए चाहे, वह किसी जाति की हो। यदि वह दलित है तो और भी अच्छी बात होगी, क्योंकि दलितों की स्त्रियों का बलात्कार करने के बाद भी, उन्हें कोई सज़ा नहीं हो सकेगी। दलित उनके समक्ष डर के मारे आवाज़ भी नहीं निकालेंगे।

हीरा ठाकुरों की इस विचारधारा को बदलकर रख देता है। वह अपनी माँ को भी इस अत्याचार को भोगते देख चुका है, इसलिए बहन से कहता है–

"तू चिंता मत कर जमना! धिक्कार है मुझे जो मैंनें इनसे तुम्हारी इज्ज़त का बदला नहीं लिया। मैंनें माँ को भी वचन दिया है। वह भी इसी मुसीबत की मारी है। मैं इन पापियों–चांडालों को बता दूँगा कि अछूत गरीब की भी इज्ज़त होती है और वह भी इज्ज़त केवल इनकी ही बपौती नहीं है।"[111]

यहाँ हीरा अपनी बहन के अपमान का बदला लेने के लिए, उसे इंसाफ दिलाने के लिए ठाकुरों को सबक सिखाने का निर्णय ले लेता है।

सुमेर सिंह जब दलितों की बस्ती में उन्हें धमकाने आता है, कि यदि किसी ने उनके खिलाफ आवाज़ उठाई तो उसका अंजाम बहुत बुरा होगा। उसकी बात सुनकर सभी दलित घबराते हैं, किंतु युवा पीढी का खून खौल रहा था। हीरा के घर के सामने जैसे ही सुमेर सिंह पहुँचता है, वैसे ही हीरा उसे चुनौती देता हुआ उस पर हमला कर देता है। हीरा के साहस को देखकर अन्य नौजवान युवक उसका साथ देने दौड़ पडते हैं, साथ ही स्त्रियाँ भी पीछे नहीं रहती। सुमेर सिंह अकेला पड़ जाता है। जमना अपने गुनहगार को सज़ा देने के लिए आगे बढ़ती है और सुमेर सिंह के पुरुषत्व के प्रतीक अंग को ही काटकर उसके शरीर से अलग कर देती है। जमना अपना प्रतिशोध पूरा कर लेती है। सुमेर सिंह तड़पने लगता है। उसको जो सज़ा मिली थी, उसका जिम्मेदार वह स्वयं ही था। अब वह किसी अछूत गरीब युवती को अपमानित नहीं कर सकता था। इससे बडी सज़ा उसके लिए और क्या हो सकती थी।

5. 'साजिश'–सूरजपाल चौहान

प्रस्तुत कहानी में नत्थू नामक दलित शिक्षित युवक बेरोज़गार है। उसकी माँ ने गाँव में सफाई काम करके अपने बेटे को बडी उम्मीदों के साथ पढाया–लिखाया था। वह अपने पुत्र को ऊँचे ओहदे पर देखना चाहती है, लेकिन नत्थू बी.ए. की पढ़ाई के बाद भी कहीं नौकरी में सफल नहीं हो पाता। क्लर्क की नौकरी के लिए भी पचास हजार की रिश्वत वह देने में असमर्थ था। इसलिए नत्थू बैंक से लोन लेकर मेटाडोर खरीदने का निर्णय लेता है ताकि अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार ला सके।

हम चाहें जीतनी ही बड़ी–बड़ी बातें या उपदेश सवर्णो के मुँह से सुन लें, किंतु जहाँ दलितों की बात आती है, वहाँ सभी के उपदेश, विचार मिलते–जुलते ही होंगे। नत्थू जब बैंक में लोन की बात करने जाता है, तब बैंक मैनेजर रामसहाय उसे

गुमराह करते हैं, कि ट्रांसपोर्ट का काम लफड़े वाला है, उसमें नुकसान हो सकता है, इसलिए पिगरी लोन लेकर फायदे का धंधा शुरु करो। नत्थू जब इससे असहमती व्यक्त करता है कि वह सूअर पालने क कार्य नहीं करना चाहता, इस पर रामसहाय कहते हैं–

> **"बस तुम लोगों में यही कमी है। दो–चार किताबें क्या पढ़ गए कि समझने लगे अपने आपको बड़ा आदमी। कल्लन जाटव के लड़के श्यामा को देख, तेरी तरह बी. ए. पास है। उसने भी तो बैंक से कर्ज़ा लेकर अपने चमड़े के व्याापर को आगे बढ़ाया है। यह नेक सलाह उसे मैंनें ही दी थी। आज लाखों में खेल रहा है।"**[112]

रामसहाय नत्थू को जिस साज़िश में फँसाता है उसी तरह अन्य दलितों को भी उसने ट्रेंड चेंज नहीं करने दिया था। लोगों की नज़रों में वह अच्छी सलाह देने वाला मैनेजर बनता था, किंतु वास्तविकता कुछ और ही थी। वह तो दलितों को सदियों से चले आ रहे .पुश्तैनी धन्धे से ही जोड़े रखना चाहता था। इस विषय में अपने विचार हेडक्लर्क सतीश भारद्वाज के समक्ष रखते हुए रामसहाय कहता है–

> **"साले आए चूहड़े–चमार पढ़–लिखकर व्यापार करने! बैंक से उधार लेकर ट्रांसपोर्ट का धंधा करेंगे, व्यापारी बनेंगें, ट्रेंड चेंज करेंगे।"**[113]

रामसहाय अपने पद और अधिकारों का दुरुपयोग अपनी छोटी सोच के लिए करता है। वह नत्थू पर ब्रह्म–बाण छोड़ चुका था। नत्थू उसकी बातों में उलझकर रह जाता है। वह पिगरी–लोन के लिए रची गई साज़िश में फॅस जाता है। नत्थू मन–ही–मन रामसहाय की उदारता और सहायता के लिए खुश होता है। रामसहाय नहीं चाहता था, कि जिसके पूर्वजों ने गंदगी साफ की हो उसके बच्चे हमारे साथ बैठकर खाना खाएँ अर्थात् हमारी बराबरी में बैठें, क्योंकि, यदि ऐसा हुआ तो ये पीढी हमारे घरों की गंदगी कैसे साफ करेगी ? ऐसी स्थिति में हमें ही हमारे घर की गंदगी को साफ करने की नौबत आ जाएगी।

नत्थू रामसहाय की मीठी–मीठी बातों में आ जाता है, किन्तु नत्थू की पत्नी शान्ता भले ही कम पढ़ी–लिखी थी, वह मैनेजर की साज़िश को भाँप जाती है। अपनी समझदारी के कारण वह जान जाती है, कि रामसहाय ने नत्थू को ब्रह्मफाँस में फँसा दिया है। सभी पढ़े–लिखे बेरोजगार क्या पिगरी–लोन ही लेते है ? या चमड़े का ही व्यापार करते हैं ? क्यों दलितों को ही विवश किया जाता है इसके लिए ? कोई दूसरा व्यापार वे क्यों नहीं कर सकते ? आदि प्रश्नों का नत्थू के पास कोई उत्तर नहीं था। वह तो इस काम को सरल समझकर खुश था, कम मेहनत में मुनाफा की बात पर वह शांता से बहस करने लगता है, तब मन–ही–मन मुस्कराते हुए शांत कहती हैं–

> **"सबसे कम मेहनत तो झाड़ू लगाने के काम में है। सुबह–सुबह मोहल्लों की सफ़ाई करो और दारु पीकर सारे दिन मारो मस्ती। कोई काम फले या न फले। ये बेतुकी बातें ही हमें निष्क्रिय बनाती हैं। यही बातें हमारे विरुद्ध काम में लाई जाती हैं। मेरी बात मानों और कल जाकर बैंक से अपना काग़ज वापिस ले लो।"**[114]

शांता शिक्षित नारी है। वह अपने पुश्तैनी काम जिसमें गंदगी, अपमान, असुरक्षा, हीनता आदि थे, उससे बाहर आना चाहती है। पति को साज़िश में फँसा देख वह उसे मैनेजर का सही चेहरे को उसके समक्ष लाती है। वह जानती है कि यदि हमें मान–सम्मान और स्वाभिमान से जीवन जीना है तो उसके लिए परिश्रम करने से पीछे नहीं हटना है।

नत्थू और शांता तय करते हैं कि रामसहाय को उसके किए की सज़ा और सबक मिलना ही चाहिए। नत्थू दलित–पिछड़े टोलों के युवकों को एकत्र करता है। दूर–दराज से दलित युवक नत्थू के घर एकत्र होकर, एक विशाल जनसमूह नत्थू और शांता के नेतृत्त्व में चल पड़ा। उनका नारा था।–

> **"मनचाहे पेशे के लिए कर्ज़ देना होगा पुश्तैनी धंधों में रखने की साज़िश बन्द करो हमें भी बहुमुखी विकास का अवसर दो।"**[115]

नत्थू, शांता और इतने बड़े जनसमूह के इस नारे को देख रामसहाय के हाथ–पाँव फूलने लगे। उसकी साज़िश को आज इतना बड़े जन–समूह जान गया था। उच्च अधिकारी, पुलिस आदि बैंक के सामने की जा रही नारे बाजी को शांति से निपटाने की सूचना देने लगे। रामसहाय के क़ेबिन में नत्थू शांता और कुछ प्रतिनिधि जाकर उससे कुछ कहें, उनसे पहले ही मैनेजर अपना रुख बदलकर उन्हें, समझाता है कि जैसा वे चाहते हैं वैसी लोन उन्हें अवश्य मिलेगी। वे तो नत्थू की भलाई के लिए ही उसे सलाह दे रहे थे। इस पर शांता टोकते हुए कहती है–

> **"बस कीजिए मैनेजर साहब अपनी भलाई की बात अब हम खुदलेंगे। आप कष्ट मत कीजिए। सदियों से आप लोग सोचते रहे हैं हमारे लिए। अब आप आराम कीजिए। अपना नफ़ा–नुकसान हम खुद समझेंगे। गलती करके ही लोग सीखते हैं। हमें गुमराह मत कीजिए। आप अपने बेटे को पिगरी का लोन देकर प्रशिक्षित करें तो अच्छा रहेगा। पिछले हफ्ते आपने क्या कहा था और अभी कैसे बातें कर रहें हैं। गिरगिट की तरह रंग बदलना तो कोई आप लोगों से सीखे।"**[116]

शांता के एक–एक शब्द सदियों से दबे–कुचले जा रहे दलितों का प्रतिकार है। सवर्ण ही हमेशा उनके लिए निर्णय लेते आए हैं, उन्हें क्या करना है ? ये वे कभी स्वयं नहीं तय कर सके, जिसका नतीजा यह है कि उन्हें आज भी उसी स्थिति में रहने के लिए विवश किया जा रहा है।

नत्थू और उनके जैसे दलित युवकों को रामसहाय की साज़िश से शांता ही छुटकारा दिलवाती है। शांता की बुद्धिमत्ता, तर्कशक्ति ही रामसहाय को सबक सीखाने में दलितों की मदद करती है। रामसहाय अपना स्थानन्तरण कहीं और करवा लेते है, किंतु जो साज़िश उन्होंने रची थी दलितों के लिए उसे वे कभी दोहराने की हिम्मत नहीं कर सकते।

प्रस्तुत कहानी में बेरोज़गारी, अस्पृश्यता की समस्या को हमारे समक्ष रखा गया है। सवर्णों की दलितों के प्रति घृणा दृष्टिगोचर होती है, साथ ही शांता जैसे शिक्षित पात्र के माध्यम से अपने अधिकरों के लिए लड़ने का साहस करना, दलितों में आई जागरुकता को प्रस्तुत करता है। भाषा–शैली सरल, मुहावरेदार एवं पात्रानुकुल है। कहानी का शीर्षक साज़िश भी घटनाप्रधान शीर्षक है।

6. 'रम्पो का चेहरा' उमेश कुमार सिंह

'रम्पो का चेहरा' उमेश कुमार सिंह द्वारा रचित कहानी है। रम्पो भोला की पत्नी है। भोला के पिता सुखराम जिसे गाँव के सवर्ण सुक्का चमार कहकर बुलाते हैं। गरीबों की बस्ती में लगभग सभी दलितों टूट–फूटे और कच्चे एवं जर्जरित स्थिति में थे, उस पर इस वर्ष हड्डी को चीर देने वाली कड़ाके की सर्दी पड़ी थी। सुक्का का कमजोर शरीर इस ठंडी को गरम कपड़ों के अभाव के कारण सह नहीं पाता और उसकी मृत्यु हो जाती है। भोला ने माँ और पिता दोनों का प्रेम पिता से ही प्राप्त किया था। पिता की मृत्यु से बहू रम्पो और पुत्र भोला बहुत दुःखी होते हैं। सुक्का के अंतिम संस्कार के लिए भोला के घर में एक रुपया भी नहीं है। कफन, सामग्री, घी आदि की व्यवस्था के लिए पंड़ित रामकिशन से उधार रुपये लेने के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं। मौके का फायदा उठाकर पंडित अपने दिल की मुराद पुरी करना चाहता है, वह भोला से कहता है–

> **"भोला यह तो सब ठीक है लेकिन मुझे तेरा भरोसा नहीं है। तेरे बाप की तीन बीघा ज़मीन है उसे लिखकर कागज़ पर अंगूठा लगा दे। जब तू रुपया लौटाएगा तो मैं तेरी ज़मीन का कागज़ तुझे वापस कर दूगाँ।"**[117]

रामकिशन यहाँ एक शोषक का प्रतीक है। वह ज़रुतमंदों को रुपये कर्ज़ के तौर पर देता है और फिर बदले में उनकी ज़मीन हथीया लेता है। अनपढ़ दलित से अंगूठा लगवाकर वे न जाने कब से उन पर अन्याय करते आए हैं।

हमारे देश में शादी, बच्चे के जन्म के समय, मृत्यु के समय आदि पर ऐसे रीति–रिवाज हैं, जिसे लोग परंपरानुसार पूरा करते आए हैं। दलितों में भी ऐसे रीति–रिवाज़ों को निभाने की परंपरा है। गाँव का व्यक्ति मनीराम इस पर कहता है–

> **"सुकराम को जीते जी कभी घी के दर्शन नहीं हुए परंतु अब आखिरी वक्त में चिता पर घी डाला जा रहा है ताकि उन्हें मुक्ति मिल जाए।"**[118]

सुकराम जैसे कितने ही दलित जीवन–भर अभाव में जीते हैं। बिना पैबंद के कपड़े उन्हें कभी पूरे जीवनकाल में भी नसीब नहीं होते और न ही दो वक्त का भोजन ही मिल पाता है। तन तोड़ परिश्रम करने के बाद भी भूखे–नंगे रहने के लिए विवश हैं। गाँव के रिवाज के अनुसार गॉव वाले भोला को बार–बार मजबूर करते हैं, कि वह अपने पिता की तेरहवीं करके समाज को भोजन खिलाए। जो स्वयं भूखा रहता हो, जिसके समक्ष उसके बच्चे भूख से बिलबिलाते हो वह भोला पूरी जाति वालों को भला कैसे भोजन खिला सकता था ? गाँव के दलित बुजुर्ग जबरन भोला से अगली पूर्णमासी पर भोज कराने का वचन ले लेते हैं, जिस पर रम्पो चिढ़ कर कहती है–

> **"यह तुमने क्या कर दिया। जहाँ पेट भरने के लाले पड़े हैं, वहाँ तेरहवीं कैसे हो पाएगी। तुम तो हम सबको मारने की व्यवस्था करके आए हो।"**[119]

रम्पो को अपने बच्चों की चिंता है। वह समझदार है, जानती है कि अधिक कर्ज़ लेने पर उनकी एकमात्र सहारा उनकी जमीन हमेशा के लिए उनसे छीन ली जाएगी। पति को वह समझाते हुए फिर कहती है–

"घर का हर फ़ैसला करने का हक़ तो मर्दों का है। चाहे घर लुटा दें। मरद ग़लत होते हुए भी सही। औरतों का सही निर्णय भी ग़लत।"[120]

रम्पो अपने पति को ज़मीन नहीं बेचते देख सकती, क्योंकि इससे वे हमेशा के लिए अपने पूर्वजों की एकमात्र निशानी और रुखी–सुखी रोटी से भी दूर हो जाएँगे। भोला पत्नी की बातों को समझता है, किन्तु वह पुरुष है इसलिए समाज के लोगों को क्या उत्तर दे, यह नहीं समझ पाता। यहाँ हम देखते हैं कि दलित स्वयं बदतर जीवन बीताते हैं, किन्तु कर्ज़ लेकर भी रीति–रिवाजों को पूरा करने के नियमों के वश होकर वे अपने पैरों पर स्वयं कुल्हाडी मारते हैं और आजीवन कर्ज़ में डूबे रह जाते हैं। रम्पो अपने पति को ऐसी गलती करते हुए नहीं देख सकती। जब पति प्रेम से नहीं समझता तो वह विद्रोह पर उतर आती है। वह पति से कहती है–

"पंच परमेश्वर के बराबर होते हैं। तो उन्हें भी न्याय की बातें ही करना शोभा देती हैं। परन्तु इन पंचों ने तो आँखों पर पट्टी बांध रखी है। हमें दर–दर के भिखारी बनाने पर तुले हुए हैं। मैं ऐसे पंचों के फैसले पर थूकती हूँ। ये कहते हैं कि तेरहवीं करके कक्का राख में से निकल आएंगे और तेरहवीं न करें तो कक्का राख में ही पड़े रहेंगे। सब मूर्खों की सी बातें हैं। इन्हें खाना–पीना ही दीखता है। एक दिन मुंह चिपड़ने के लिए ज़िदगी भर हमारे मुंह पर मुछका बांधने पर तुले हुए हैं। तुम तो मर्द होकर भी बस हुक्का पानी बंद करने से ही घबरा रहे हो। मैं इन पंचों के फैसले के खिलाफ़ विद्रोह का डंका बजाकर रहूँगी। मैं तुमसे भी कहे देती हूँ, तरेहवीं करने का नाम भी मत लेना नहीं तो मैं कुएँ में कूदकर मर जाऊँगी।"[121]

रम्पो का विद्रोह समाज के उन रीति–रिवाजों और परंपराओं के प्रति था, जिससे गरीब किसान मजदूर बन जाते हैं और जीवनभर सवर्ण की गुलामी करने पर विवश हो जाते हैं। उसका विद्रोह दलित समाज के उन लोगों के प्रति हैं, जो अपने ही दलित गरीब लोगों को गुलाम एवं मजदूर बनाने पर तुले हुए हैं, वह भी मात्र अपने एक दिन के जीभ के स्वाद के लिए। पति को असहाय देखकर रम्पो स्वयं अकेले ही विद्रोह करने का निर्णय ले लेती है। इस समय ढिबरी की रोशनी में रम्पो का चेहरा सोने सा चमकता है। यह चमक आत्मविश्वास से जागे विद्रोह की थी, जो अपने परिवार की रक्षा के लिए चण्डी माँ का रुप धारण कर लेती है। रम्पो अशिक्षित है, किन्तु अन्याय के विरुद्ध अकेले लड़ने को तैयार होती है। कहानी में रम्पो का चरित्र एक सशक्त नारी का चरित्र है, शीर्षक की दृष्टि से यह उपयुक्त है। भाषा–शैली में बोल–चाल की खड़ी बोली का ही इस्तेमाल किया गया है, जबकि वातावरण ग्रामीण दिखाया गया है। संवाद की दृष्टि से कहानी में कुछ छोटे और कुछ बड़े संवाद देखे जा सकते हैं। रम्पो के माध्यम से कहानीकार ने दलित महिलाओं में आई जागृति और विद्रोह के भाव को प्रस्तुत किया है। वे अपने परिवार की रक्षा एवं भलाई के लिए आगे बढ़कर संघर्ष करने के लिए तैयार होने लगी हैं

6. 'बदला' सुशीला टाकभौरे

सुशीला टाकभौरे द्वारा रचित कहानी 'बदला' में लेखिका ने गाँव में दलित–अछूतों के साथ दुर्व्यवहार अपमान और अत्याचार की घटनाओं को एवं उसके प्रति दलितों के विद्रोह को प्रस्तुत किया है। कोई भी कालखण्ड रहा हो शक्तिशाली वर्ग द्वारा शक्तिहीनों पर हमेशा अत्याचार होता रहा है। शक्ति के अभाव में, एकता के अभाव में कमजोर बना दलित वर्ग सवर्ण के समक्ष हाथ जोड़े खड़ा दिखाई देता है। प्रस्तुत कहानी में छौआ नामक वृद्ध महिला सवर्णों के घर मैला ढोने, प्रसूति के समय सवर्ण महिलाओं के लिए कुशल दाई बनकर उन पर उपकार करती है, किन्तु गाँव के सवर्ण उसी के नाती की पिटाई करते हैं। कल्लू शरीर से हट्टा–कट्टा था। वह दलित है, इसलिए सवर्ण बच्चों से उसे दूर ही रहना चाहिए, ऐसी ही सलाह माँ और छौआ नानी हमेशा देती हैं। सवर्ण सहपाठी जब कल्लू को घेरकर अपशब्द कहकर उसे अपमानित करते हैं, तो उसकी सहन शक्ति खत्म हो जाती है और कल्लू उन लड़कों की पिटाई कर देता है।

सवर्णों का समूह छौआ माँ के घर पहुँचकर कल्लू को दंड देना चाहता है। छौआ माँ उनके समक्ष गिड़गिडाकर क्षमा माँगती है, जीवनभर की गई अपनी सेवा की दुहाई देती है, किन्तु उसका भी अपमान किया जाता है। लोगों के कठोर शब्द सुनाई देते हैं जैसे–

> **"भंगी की औलाद.....अछूत.....शुद्र .....भिखारी.....भिखमंगे....हमारी दया पर जीने वाले ..... हमारे टुकड़ों पर पलने वाले..... आजकल इनको घमण्ड आ गया है.... बहुत गर्रा गए हैं.....सण्डे–मुसण्डे हो गये हैं.....इनको तो गाँव में घुसने नहीं देना चाहिए....इनके लिए पहले वाले नियम ही ठीक थे। अंग्रेजों ने हमारे धर्म का सत्यानाश कर दिया है अछूतों को हमारे सिर पर बैठा दिया है। हमारी सरकार भी इनको बहुत बढ़ावा देती है।.....इनके हौसले बहुत बढ़ गये हैं.....इनको ठीक करना ही पड़ेगा.....एक–एक को मार डालेंगे....इनके घरों में आग लगा देंगे..।"**[122]

शक्तिशाली वर्ग हमेशा से दलितों का शोषण करते आया है। शोषण अत्याचार के विरुद्ध दलितों ने कभी विद्रोह नहीं किया इसलिए उनकी हिम्मतें और आत्याचार बढ़ता ही गया। अंग्रेजों और बाद में सरकार ने दलितों को इस शोषण से मुक्त करने का प्रयास किया है, किन्तु आज भी सवर्ण समाज में दलितों को घृणा की दृष्टि से ही देखा जाता है। छौआ माँ ने जिन सवर्ण बच्चों की माँ की प्रसूति करवाई थी, उन्हीं बच्चों को जब वह अपने नाजी–पोते के समान कहती है तब उत्तर मिलता है–

> **"बूढ़ी डोकरी, तू सठिया गई है, तेरा दिमाग तो ठीक हैं ?.....तू भंगन डोकरी, हम तेरे नाती–पोते कैसे हो सकते हैं ?"**[123]

छौआ माँ ने जीवनभर जिनकी सेवा की, जिन्हें हमेशा अपना माना जिनकी ज़रुरतों में दिन–रात कभी न देखा, निःस्वार्थ जिन्हें सेवा दी, आज उन्हीं के द्वारा कडवी बातें, अपमान भरे शब्द जैसे– जात–औकात.....सठिया गई है....दिमाग फिर गओ है..... भंगन डुकरिया.....आदि सुनकर उसे लज्जा, ग्लानि, शर्म और अपमान महसूस होने लगता है। वह करुण आर्तनाद करने लगती है। बेटी माँ की स्थिति देखकर छटपटाती है।

भीतर कल्लू को छिपा रखा है, नही तो सवर्ण उसे पीट–पीट कर अधमरा कर देंगे। माँ की करुण स्थिति देखकर कल्लू की माँ और छौआ की पुत्री उस भीड़ के समक्ष अपना विद्रोह प्रदर्शित करती हुई चीखकर कहती है–

> **"पापी, पाखण्डी हमसे लड़न आये हैं। हमारे दुश्मन, हमरे दखज्जे पे हमसे लड़न आये हैं। बेईमान, मेरी माँ को किलपा–किलपा के रुला के रुला रहे हैं.....इनका सत्यानाश हो जाए। मेरे बेटे को कुछ हो गया, तो देख लेना, मैं भी किसी को नहीं छोडूंगी.....तुम सबका खून पी जाऊँगी.....।"**[124]

छौआ की पुत्री उसकी तरह नहीं थी, जो अपमानित होकर रोने लगे वह तो ईंट का जवाब पत्थर से देना जानती थी। समय और परिस्थिति के संघर्ष से सब बदल सकते हैं। छौआ माँ को जब यह पता चलता है कि सवर्णों ने उसके नाती कल्लू को पीटा है, तो वह सारी सीमा, जीवनभर की गुलामी और दलित होने का भय भूलकर रणचण्डी का रुप धारण कर लेती है। एक–एक को खदेड़ देती है। उसकी आँखों से अंगारे बरसने लगते हैं और मन में ज्वालामुखी फूट पड़ता है। पापियों को दंड देने देवी जैसे प्रकट होती है, वैसे ही सबको हमेशा आशीष देने वाली छौआ मां आज दुश्मनों से गिन–गिन कर बदला ले रही थी। छौआ माँ के इस बदलाब और विद्रोही रुप को देखकर नौजवान, बूढ़े–बच्चे सभी में एक शक्ति का संचार होता है और उन्हें कमजोर समझने वाले सवर्ण भागने को मजबूर हो जाते हैं। यहाँ जीत सच्चाई, एकता और आत्मविश्वास की होती है। छौआ माँ के ये शब्द–

> **"अब हम किसी से नहीं डरेंगे.....हम भी ईंट का जवाब पत्थर से देंगे....वे शेर हैं तो हम सवा शेर बनकर रहेंगे। एक दिन ऐसो आयेगो कि लोग हमसे डरेंगे। मेरो कल्लू इसी गाँव में रहेगो, शेर बनकर।"**[125]

ज्वालामुखी के भीतर वर्षों तक आग सुलगती है और अंत में वह फूट पड़ती है उसी तरह छौआ माँ पर वर्षों तक अत्याचार होता आया, किन्तु अपने नाती पर अन्याय होता देख उसके भीतर का ज्वालामुखी फूट पड़ता है। अब वह कभी भी अन्याय नहीं सहेगी, आत्मसम्मान के लिए लड़ना पड़े तो वह तैयार है। छौआ माँ में आए बदलाव को लेखिका सुशीलाजी ने 'बदला' शीर्षक देकर उसमें आए बदले की भावना को प्रस्तुत किया है।

छौआ माँ का पात्र ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'अम्मा' कहानी से मिलता जुलता है, किन्तु अम्मा कहानी की अम्मा विद्रोह नहीं कर पाती है, यहाँ छौआ माँ विद्रोही नारी बनकर अन्याय के विरुद्ध लड़ने का साहस दिखाती हैं। हरीश मंगलम् की 'दायण' गुजराती कहानी में दाई माँ भी अपमान सहती है, किन्तु प्रतिकार नहीं करती, जबकि छौआ माँ के पात्र में शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाने की क्षमता देखाई गई है। समय के अनुसार पात्र में बदलाव आना देखा जा सकता है।

7. 'जोजना' – दीपक कुमार 'अज्ञात'

दीपक कुमार **'अज्ञात'** द्वारा रचित 'जोजना' कहानी की नायिका सुकिया ने अपने पति को उस समय खो दिया था, जब वह गर्भवती थी। पति की मृत्यु के समय सुकिया मात्र उन्नीस वर्ष की थी। वह चाहती तो दूसरा सहारा पा सकती थी, किन्तु

अपने एक मात्र पुत्र के लिए वह विधवा जीवन की कठिनाइयाँ झेलती है। कई वर्षों तक कठिनाइयों को झेलते हुए वह भीतर–ही–भीतर कठोर हो गई थी, साथ–ही–साथ गाँव भर में मुंह–फट भी। लेखक उसका परिचय देते हुए कहते हैं–

> **"किसी से डरना, किसी की उल्टी–सीधी सुनना और गरीब–गरबे पर होते जुल्म को सहना उसके वश की बात नहीं रही। सोच–समझकर ही कोई किसान उसे मुँह लगाता है उल्टी–सीधी बातों से छौंक लगवाना हो तो छेड़ ले कोई सुकिया को! भीतर–बाहर हिलाकर रख नहीं दिया तो वह एक बाप की बेटी नहीं।"**[126]

दुःख, संघर्ष, विपदा, समस्या, अभाव से मनुष्य दुःखी अवश्य रह सकता है, किन्तु इससे वह कमजोर हो जाता है, यह सही नहीं हैं। इन सबसे वह अधिक कठोर हो जाता है। छोटी–मोटी परेशान फिर उसके लिए बड़ी नहीं होती। सुकिया के साथ यही होता है। दुर्दिनों से लड़ती–पछड़ती वह किसी से नहीं डरती थी। अन्याय सहन करना उसने छोड़ दिया था, यदि कोई उसे छेड़ देता, तो बाद में बहुत ही पछताना पड़ता उसे।

गाँव की स्कूल के मास्टर जोगिन्दर बडा धूर्त–ठग है। स्कूल में बच्चे कम थे, इससे इन्स्पेक्शन होने पर उनका तबादला हो सकता था। जोगिन्दर ने घर–घर जाकर लोगों को जाकर समझाया कि स्कूल में बच्चों को मुफ्त में किताबें और अनाज मिलेगा आप बच्चों को पढ़ने भेजिए। बाद में स्कूल में जब बच्चे बढ़ गए और जाँच पूरी हो गई तो, उसने उन बच्चों से स्कूल में नाम लिखवाने की फीस के नाम पर रुपये लेने शुरु कर दिए। पन्द्रह किलो अनाज की जगह मात्र डेढ़ किलो अनाज दिया जाता, वह भी उन्हीं छात्रों को जिन्होंने नाम लिखावाने की फीस दी हो।

सरकार गरीबों के लिए कई योजनाएँ बनाती है, किन्तु जोगिन्दर मास्टर जैसे पैशे के शिक्षक भी गरीबों का शोषण करने लगें, तो फिर गरीबों की सहायता की अपेक्षा भला किससे की जाए। आज भी गाँव की कई सरकारी स्कूलों में मुफ्त शिक्षा, किताबें, भोजन आदि की सुविधा दी जा रही है, लेकिन जो वस्तुएँ गरीबों के लिए दी जाती हैं, उस की क्वालीटी इनती अच्छी नहीं होती, जितनी सरकार उसकी कीमत चुकाती है। बीच के आला–अधिकारी, छोटे कर्मचारी आदि अपना–अपना कमीशन ले लेती हैं। गरीबों तक पहुँचते–पहुँचते वह उपयोग के योग्य नहीं रह जाती। सरकार इस सच्चाई से बेखबर है, यह सच नहीं है। सारी सच्चाई जानकर भी सभी खामोश हैं, किन्तु सुकिया खामोश रहने वालों में से नहीं है। वह जोगिन्दर मास्टर की स्कूल में जाकर उनसे अनाज न मिलने का कारण पूछती है। मास्टर मोलवीजी के साथ बैठे थे। सुकिया के सवालों का बडी लापरवाही से उत्तर दे रहे थे। मास्टर होते हुए भी जोगिन्दर दलित, विधवा सुकिया से गंदी–भद्दी भाषा का इस्तेमाल जब करता है, तो सुकिया पास में पड़े झाड़ू से उसकी बहुत पीटाई करती है। उसे बचाने आए मौलवी की भी पीटाई कर देती है। वह गालियाँ देते हुए कहती है–

> **"साला मास्टर, चोर, दलाल,.....गेहूँ बचा पड़ा है....कहता है गेहूँ नहीं है..... .....पहले बच्चा बुलाने के लिए घर–घर खुशामद करता था....अब नाम लिखाई का टका चाहिए.....बाप का स्कूल है....जागीर है.....नाना की..... पाँच–दस किलो गेहूँ नहीं मिलता.....इसके चलते खस्सी की चोरी हो गई....."**[127]

सुकिया से भद्दा मजाक करने वालों को वह नहीं बख्सती चाहे वह गाँव का कोई भी व्यक्ति हो, या कोई मास्टर ही क्यों न हो। वह स्त्री इसका अर्थ यह नहीं कि वह किसी भी मर्द के कैसे भी अपशब्द या अपमानजनक व्यवहार को सहन करे। स्वाभिपान और आत्मसम्मान की रक्षा कैसे करना चाहिए, वह जानती है। अपने अधिकारों को पाने के लिए यदि लड़ना भी पड़े तो वह पीछे हटने वालों में से नहीं है। मास्टर जोगिन्दर को पीटकर वह न्याय पाना चाहती है। वह जानती है, कि दलित नेता ही उसे न्याय दिला सकते हैं।

सुकिया की समस्या सुनकर दलित नेता जोगिन्दर मास्टर के कारनामों को विस्तृत रुप से अखबार में छपवा देते हैं। जोगिन्दर मास्टर सुकिया से बदला लेने के लिए उसी की जाति के नेता गुणेसर को उकसाया। सुकिया के चरित्र पर कीचड़ उछालने के लिए पंचायत बुलाई गई गुणेसर को जोगिन्दर इतनी शराब पिलाता है कि वह भूल जाता है कि वह सुकिया जिसके खिलाफ वह पंचायत बुला रहा है वह उसी की जाति–परिवार की इज्जत है। पंचायत कुछ निर्णय ले उससे पहले ही गुणेसर का पूत्र दलित नेता के सिर पर लाठी से वार करता है, वे घायल हो जाते हैं। सुकिया बैलगाड़ी में उन्हें बैठाकर थाने ले जाती है। गुणेसर पछतावें के आँसू बहाने लगता है।

सुकिया एक विद्रोही दलित नारी के रुप में हमारे समक्ष आती है। शोषण के खिलाफ विद्रोह करने वाली सुकिया किसी से नहीं डरती। सुकिया का चरित्र दलित नारियों के लिए एक आदर्श बनकर हमारे समक्ष आता है। हमारे देश को अंग्रेजों से आज़ादी मिले वर्षों बीत गए, किन्तु भ्रष्टाचार, अस्पृश्यता, अंधविश्वास, अत्याचार, शोषण से आज भी गरीब मुक्त नहीं हुए है, बल्कि यह तो ओर अधिक बढ़ता जा रहा है।

9. 'सुनरी' – श्याम नारायण 'कुन्दन'

'सुनरी' कहानी में लेखक ने 1954 में अपने गाँव में घटी एक घटना को प्रस्तुत किया है। लेखक शहर से अपने गाँव जाते हैं, जहाँ वे अपने गाँव के बड़े–बुजुर्गों से रास्ते में चाय की दुकान पर मिलते हैं। लेखक स्वयं क्षत्रीय कुल से थे, किन्तु शहर में शिक्षा प्राप्त करने से उनके मन से ऊँच–नीच का भेद–भाव दूर हो गया था। गाँव के साठ वर्षीय मुखिया शिवनारायण, देवनाथ बाबू आदि लोग चाय की दुकान पर बुजुर्ग दलित बनरसिया को अपमानित करते हैं। लेखक सारी घटना देखते हैं और इस भेद–भाव का विरोध करते हुए, उन्हें सलाह देते हैं, कि आप लोगों को शहर जाकर देखना चाहिए कि, वहाँ के लोग किस तरह ऊँच–नीच भूलकर एक साथ रहते हैं और अंर्तजातीय विवाह भी करते हैं। लेखक के आधुनिक एवं खुले विचारों को गाँव के बुजुर्ग नहीं स्वीकारते क्योंकि दलितों पर अत्याचार करना उनका शोषण करके अपने स्वार्थ की पूर्ति करना उनकी आदत बन चुकी थी, जिसे वे किसी कीमत पर नहीं छोड़ सकते थे।

गॉव के डोम महंगिया ने अपनी जीवन के कई वर्ष इन सवर्णों की सेवा की, उनकी गंदगी उठाई, मरे पशुओं को उठाया, उनकी जूठन उठाई, उन्हें स्वच्छ वातावरण देने के लिए स्वयं घृणित कार्य किया। महंगिया की अंतिम साँसे चल रही थी, डॉक्टर ने उसे शुद्ध पानी के साथ दवाई देने की सलाह दी थी। महंगिया के दो पोते सवर्णों के कुँए से पाली लेने आते है, वे जानते हैं, कि माँगने पर पानी नहीं मिलेगा इसलिए पानी की चोरी करना चाहते हैं। किशोरावस्था के इन बच्चों को शिवनारायण एवं उसके साथी बूरी तरह पीटतें हैं। लेखक से यह सब सहा नहीं जाता, किन्तु वे विवश थे,

उन्हीं के लोग उनकी तरह न होकर हैवान से कम नहीं थे। कहानी की नायिका इन दलित बच्चों की माँ एवं मंहगीया की पुत्र वधू सुनरी अपने बच्चों के बचाव के लिए आगे आती है।

सुनरी अपने नाम के अनुरुप ही सुंदर थी। गाँव के कई लोग उसके आगे–पीछे जूते चटकाते फिरते थे, किन्तु सुनरी किसी को घास भी नहीं डालती थी। उसका बचपन किसी कस्बे में बीता था इसलिए थोड़ी मुँहफट थी। वह शिवनारायण के अपमानजनक शब्दों को सुनकर भी पानी के लिए पहले गिड़गिडाती है, उन्हें महंगिया के अंतिम समय में पानी के महत्त्व की बात बताती है, साथ ही उन्हें याद दिलाती है कि, महंगिया ने जीवन भर आप लोगों की सेवा की है। ऐसी स्थिति में भी आप लोगों को रहम क्यों नहीं आ रहा ?

शिवनारायण एवं उसके साथी अपने अहंकार और मद में इतने चूर थे, कि किसी गरीब दलित की अंतिम साँसों में भी उसे एक बूँद पानी नहीं देना चाहते हैं। सुनरी को वहाँ से भागने को कहते हैं, तब सुनरी थोड़ी टेढ़ी हो जाती है अर्थात् उसकी सहन शक्ति खत्म हो जाती है। वह जानती है कि जिस जगह वह खड़ी है वह सरकारी है, वह कहती है–

> **"ए बाबू, कुएँ से पानी खीचे द चाहे मत खींचे द, उ तोहार बपहंसी है, लेकिन रास्ता से तू हमरा के नाहीं भगा सके ला। काहें से कि हम जहाँ खड़ी हयीं उ आम सरकारी रास्ता ह, सरकारी..... sss।"**[128]

सुनरी अशिक्षित है, किन्तु सरकारी रास्ते पर सभी का समान अधिकार होता यह जानती है। वह जान गई है, कि ये सवर्ण अत्यंत क्रूर हैं, वे किसी पर दया नहीं करेंगे, इसलिए उनके समक्ष गिडगिडाना व्यर्थ है। सुनरी के इस साहस भरे शब्दों को शिवनारायण नहीं सह पाता। वह सुनरी को गालियाँ देने लगता है। सुनरी गाली देने वाले, इस शिवनारायण की काली करतूतों को जानती है। उनके बीच का संवाद इस प्रकार है–

> **"पानी तू नहीं भगवी....आंय। बहुत जोश चढ़ गईल बा जवानी का तोरा पे ससुरी।" शिवनारायण चाचा गाली देते हुए चिल्लाए।**
> **'ए बाबू जबान संभाल के बोलअ....।'**
> **"अच्छा....बहुत इज्जत वाली हई तू....बड़ी सतबरता हयी तू....साली रण्डी कहीं की।"**
> **"अगर हम रण्डी हयीं त तू भी.....आ तू सब भी कोई दूध का धुला हुआ नाहीं हो बाबू.....भड़ूवा हो भड़ूवा....सबके सब भड़ूवा। दिन के उजियारे में देखावे के खातिर हमरा साए से भी बचते हो और रात के अधियारे में हमारा छाती और चूतड़ पर हाथ मारे में तुम लोगन के धरम नष्ट नाहीं होला।"**
> **"अरे रे sss का बक रही है रे साली वेश्या कहीं की!"**[129]

धर्म की दुहाई देने वाले शिवनारायण एवं उसके साथी गरीब दलितों की बहूओं, बेटियों का शरीरिक शोषण करते आए हैं। बाहरी रुप में वे इनसे दूर रहकर अपने आप को सवर्ण कहते हैं और रात में इन्हीं दलित स्त्रियों का सामीप्य पाने के लिए उनके आगे–पीछे चक्कर काटते हैं। सुनरी वास्तव में निडर एवं स्पष्ट वक्ता

थी। गरीबी के कारण दलित स्त्री वेश्या बनती है, ताकि उसके परिवार और बच्चों को भूखों न मरना पड़े, किन्तु उसकी विवशता का फायदा उठानेवाले सवर्ण उससे शारीरिक संबंध बनाने पर न तो अशुद्ध होते हैं और न ही उनके मान–सम्मान पर कोई कीचड़ उछाल सकता है, कीचड़ तो हमेशा सुनरी जैसी दलित स्त्री पर ही उछाला जाएगा, वह भी उन्हीं के द्वारा जिसने सुनरी का शोषण किया हो।

अपनी पोल खुल जाने पर शिवनारायण सुनरी को लाठी से मारने उठते हैं, सुनरी अपना बचाव करके उसे धक्का दे देती है, वह गिर जाता है, दूसरे आदमी जैसे ही उसकी ओर बढ़ते हैं, सुनरी उन्हें चेतावनी देते हुए कहती है–

> **"खबरदार कोई आगे बढ़ल त..... यहीं फंसरी लगा के जान दे देहिब. या सरेआम नंगी हो जाईब.....सबकरा के जीवन भर जेहल में बंद करवा के दम लेहिब।"**[130]

सुनरी का यह क्रूर रुप सबकी अपेक्षा से परे था। सवर्णों के समक्ष हमेशा गिडगिडाने वाली, सिर नीचा करके रहने वाली, उनका अत्याचार सहने वाली दलित नारी आज उन्हें चेतावनी दे रही थी, कि अब बस बहुत हो चुका यदि किसी ने उस पर अन्याय किया, तो वह उसे ऐसा सबक सीखाएगी, जिंदगी भर की जेल हो जाएगी। ऐसा करने के लिए वह कुछ भी करने को तैयार है। जाते–जाते वह फिर कहती है–

> **"बड़ा बड़कवा बनते हो तुम लोग। बनाते रहो अपने घर में बड़कवा। मंहगी के मरला के बाद तोहन लोगन के आपन पखाना खुद साफ करे होई, तब पता चली। तब हमारा सूअर इ गाँव में नहीं चरीहं। जूठन भी तोहें खुद अपने हाथ से फेंके के होई। हमार बेटा ई काम नहीं करिहं। रह गईल पानी क बात त, उ त भगवान ऊपर से बरसावलन। माँ धरती अपने कोख से देलींन। उ केहू में भेद नाहीं करीलींन। फिर उ हमरा अंगना में भी जरुरत उतिरइहं। हं, अब हमहुं अपना अंगना में कुँआ खोद के दिखाईब।"**[131]

सुनरी उन सारी मान्यताओं, रिवाजों, परंपरा एवं अत्याचार के अंत का ऐलान करती है। उसके बुजुर्गों ने जो अत्याचार सहा अब वह न स्वयं सहेगी और न ही अपने बच्चों को सहने देगी। सवर्ण अपनी गंदगी उनसे उठवाते हैं, जब वे स्वयं अपना मैला ढोएँगे तभी वे दलितों की पीड़ा को समझ पाएँगे। ईश्वर ने सभी को समान बनाया है, प्रकृति किसी में भेद–भाव नहीं रखती। मनुवादी विचारधारा ने इन सवर्णों ने यह भेद–भाव हमेशा रखा है। सुनरी पानी के लिए तड़पते अपने ससुर को भले ही पानी न दे पाई हो, किन्तु महंगिया की तरह कोई दूसरा दलित अब शुद्ध पानी के लिए नहीं तरसेगा ऐसा ऐलान करती है।

सुनरी का चरित्र अत्यंत ही शक्तिशाली है। निर्भीगता से वह अपने बच्चों की एवं स्वयं की रक्षा करती है, साथ ही उस पर कीचड़ उछालने वालों की मिट्टी पलीत कर देती है। कहानी में भोजपूरी बोली का प्रयोग किया गया है। संवाद, पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाले हैं। शीर्षक 'सुनरी' बिलकुल उपयुक्त है।

10 'सांग' – जयप्रकाश कर्दम

जय प्रकाश कर्दम द्वारा रचित **'सांग'** कहानी जिसका अर्थ है 'नाटक'। आज भी गाँवों में मनोरंजन के लिए 'सांग' खेला जाता है और गाँववासी बहुत ही उत्साह और खुशी के साथ यह देखते हैं, टिकिट के रुपये भी देते हैं। चम्पा के गाँव सोनपुर में यह सांग की टोली तीन दिनों से आई थी। पूरा गाँव छोटे–बड़े, पुरुष–स्त्रियाँ सभी दिनभर की मेहनत–मजदूरी के बाद आनंद पाने के ये क्षण चूकना नहीं चाहते थे। सबके अंदर एक उमंग थी। चम्पा को यह सांग शब्द से नफरत थी। चंपा की सखी शीला उसे अपने साथ ले जाना चाहती है किन्तु चम्पा को यह सांग समय की बर्बादी लगता है। वह ऐसे क्षणिक सुख को पाकर जीवन भर के दुख को नहीं भूल सकती थी। 'सांग' को भ्रम और धोखा मानने वाली चम्पा शीला से कहती है–

> **"मैं पूछती हूं क्या मिल जाएगा सांग देखन से, थोड़ी–देर के लिएमन का बहलाव ही न?.....जबकि हम जानते हैं कि पूरी जिंदगी फिर वही पीड़ा, वही दर्द, वही दुःख, अभाव और रोना–झीकना है, यही हमारे जीवन का सच है। फिर इस क्षणिक सुख के लिए इतना पागलपन क्यों ? क्या क्षण भर का यह सुख भुलावा नहीं है। फिर हम अपने आपको भ्रम और धोखे में क्यों रखें ? क्यों न सच को ही स्वीकार करें हम।"**[132]

चम्पा ने अपने पति को खोया था, वह भी ऐसे ही वातावरण में, वह अकेली हो गई थी। आठ वर्षों से अपने परिवार का पालन–पोषण अकेले करने वाली चंपा के दिल में प्रतिशोध की ज्वाला जल रही थी। मुखिया ने उसके बीमार पति को इसलिए बूरी तरह मारा था, क्योंकि वह खेत में पानी बलाने न जाकर थोड़े समय के लिए बीमारी से ऊबे अपने मन को बहलाने के लिए सांग देखने चला गया था। भुल्लन को दूसरे दिन सुबह ही मुखिया और उसके आदमी इतना पीटते हैं कि वह अधमरा हो जाता है। गॉव के दलित परिवारों में से किसी में इतना साहस नहीं था, कि वे भुल्लन को बचा सके। भुल्लन की माँ–बहन, और पत्नी चम्पा उसकी रक्षा के प्रयास करती हैं, किन्तु मुखिया नहीं रुकता। चम्पा भी मार खाती है। बीमार और घायल पति की सेवा करती है, लेकिन तीन दिन तक बेहोश रहने के बाद भुल्लन की मृत्यु हो जाती है।

भुल्लन की मृत्यु सवर्णों के अत्याचार की चरमसीमा को प्रस्तुत करती है। चम्पा की इतनी दयनीय और विवश स्थिति की अपने पति के हत्यारे के खेत में ही उसे मजदूरी करनी पड़ती है। यह पीडा उसके लिए असहनीय थी, इसलिए वह सांग नहीं देखना चाहती। आठ वर्षों पहले की स्मृति में खोई हुई चम्पा अंतिम दृश्य तक आते–आते यह आग एक ज्वाला में परिवर्तित हो गयी। चम्पा के मन में प्रतिशोध लेने का एक मार्ग सूझा और वह सांग देखने चली गई। जैसे उसे अनुमान था, मुखिया सुबह ही दरवाजे पर मौजूद था। उसके खेत में रात को काम न करने वाली चम्पा को वह भुल्लन की ही तरह दंड देकर अपने अहंकार और कोध को शांत करना चाहता है। उसे गालियॉ देते हुए उसे मारना चाहता है, किन्तु चम्पा पहले से ही तैयार बैठी थी। मुखिया के हाथ बढ़ाते ही वह, ओढ़ने में छिपाए गंडासे से उसके सिर पर वार करती है, मुखिया का सिर दो फांकों में बँट जाता है।

चम्पा पर जो अत्याचार मुखिया ने किया था, आठ वर्ष बाद वह अपना विद्रोह व्यक्त करती है। यह बात पहले कभी उसके मन में क्यों नहीं आई ? यहाँ एक

प्रश्न उठता है। जो निड़रता चम्पा ने अब दिखाई वह, पहले क्यों नहीं दिखाई। फिर भी दलित नारी का विद्रोह चरम सीमा पर पहुँचता है तो अपने प्रतिशोध के लिए एवं स्व–रक्षा के लिए वह मुखिया की जीवन–लीला खत्म कर देती है। चम्पा द्वारा की गई यह हत्या उसके जर्जर, बीमार पति पर बेरहमी से बेहिसाब पिटाई, उसकी हड्डियों का भुरता बनाने वाले मुखिया की करनी का फल था।

फ्लेश–बेक में प्रस्तुत कहानी की घटना रची गई है। चम्पा इन्हीं घटनाओं को याद करते हुए उसके भीतर प्रतिशोध लेने का विचार आ जाता है। फ्लेश–बेक की शुरु की स्थिति में डरी, सहमी, असहाय चम्पा फ्लेश–बेक के अंतिम समय तक आते–आते निडर, साहसी और चण्डी माँ का रुप धारण कर लेती है, जो राक्षस का वध करने के लिए तत्पर सी दिखाई देती है।

प्रस्तुत कहानी के संवाद छोटे है, साथ ही कहानी के कथानक को आगे बढ़ाने एवं चरित्र पर प्रकाश डालने जैसे गुणों से युक्त हैं। भाषा ग्रामीण वातावरण एवं पात्र परिवेश के अनुरुप है।

11. 'आखेट'–रत्नकुमार सांभरिया

गरीब सोमा और उसकी पत्नी रेवती शहर में अपने पाँच महीने के बच्चे के साथ पौष की सर्दी में टाट की बोरियों और प्लास्टिक की पन्नियों की एक तान में रहते हैं। उन्हें अपना गाँव और बूढी माँ को इसलिए छोड़कर शहर भागना पड़ा क्योंकि गाँव के ठाकुर नानक सिंह से अपनी इज्जत बचाने के लिए रेवती उसकी नाक काट देती है। ऐसा दंड देकर रेवती उन सभी स्त्रियों का बदला नानक सिंह से ले लेती है, जिन्हें वर्षों से नानक सिंह अपनी वासना का शिकार बनाता रहा था। रेवती जिस गाँव में ब्याहकर आई थी, वहाँ सवर्णों का दलितों पर अत्याचार करना आम बात थी, गरीब दलित सवर्णों के हर आदेश को स्वीकार करने के लिए विवश थे। सोमा अकेला ही नानक सिंह से बदला लेने को तैयार था, किन्तु एक ताकतवर सवर्ण से एक दलित अपने समुदाय के सहयोग के बिना लड़े तो जीत उसे मिले यह नामुमकिन सा था। अपनी और रेवती की जान बचाने के लिए सोमा रातों रात ही अपना गाँव छोड़कर शहर भाग आता है। अपना गाँव, अपना घर और दो बीघा जमीन छोड़कर शहर की ओर पलायन करने वाला सोमा दीहाड़ी मजदूरी करके जैसे–तैसे जीवन यापन कर रहा था।

घर में बीमार बच्चा, पौष की भयानक सर्दी, न जलाने के लिए लकड़ी, न ओढ़ने बीछाने के साधन। सोमा फिर भी पानी की हौज को खाली करने की दिहाडी करने के लिए तैयार हो जाता है। गरीबी गरीबों से आखिर क्या–क्या नहीं करवाती। चौबीस का सोमा चौंतीस का दिखाई देने लगता है और रेवती भी अपनी उम्र से पहले ही अपने चेहेरे की रौनक खोने लगती है।

एक ओर नानक सिंह सोमा की माँ को बेघर करके मरने पर विवश कर देता है दूसरी ओर सोमा और रेवती को मौका मिलने पर दंड देने की तैयारी रखता है।

> **"नाक कट जाना गोली लगने से ज़्यादा पीड़ादायक होता है। गोली लगने से आदमी मर जाता है। नककटी सामाजिक मौत है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी अनवरत चलती रहती है। नाक की आँख से ज़्यादा अहमियत है। अंधा जीवन जी लेता है, जिसके चेहरे पर नाक न हो, उसे कुआँ–बीवड़ी देख लेने चाहिए।"**[133]

रेवती और सोमा जिस जगह रहते थे, वह लाला सुख प्रसाद की हवेली का पिछवाड़ा था। विधुर सुख प्रसाद पैंसठ वर्ष की उम्र में भी रेवती जैसी उम्र की स्त्री को अपनी रखैल बनाना चाहता है। वह रेवती को आए दिन सोने के गहने, नोट आदि दिखाकर लोभ देना चाहता है, किन्तु रेवती उसके उपहारों पर थूकती है। क्रोधित सुख प्रसाद पिस्तौल लेकर नशे में रेवती को मारने या स्वयं मरने की धमकी देता है, किन्तु रेवती अपने बीमार बच्चे की चिंता में उसकी ओर ध्यान ही नहीं देती। उसके हाथ से पिस्तौल गिर कर नीचे आ जाती है, रेवती उसे खिलौना समझकर बच्चे के लिए रख लेती है।

गाँव और शहर दोनों जगह रेवती सवर्णों की गंदी निगाहों से अपने आपको बचाना चाहती है। सवर्ण दलित स्त्रियों को लोभ देकर या फिर जबरन प्राप्त करने के लिए किसी भी हद तक चले जाते हैं। सोमा ऐसे ही नानक सिंह को सबक सिखाना चाहता है। जैसे ही पिस्तौल उसके हाथ आती है वह बीमार बच्चे और ज्वर में स्वयं होने पर भी रेवती को लेकर अपने गाँव अपने खेत और घर लौटने की हिम्मत जुटा लेता है। एक गोली पिस्तौल की उसे नानक सिंह से संघर्ष करने का साहस देती है।

प्रस्तुत कहानी में दलित स्त्री के जातीय शोषण, सवर्णों द्वारा अत्याचार, दलितों का पलायन, शहर में उनकी दुर्गति की स्थिति, गरीबी लाचारी एवं शहर में भी दलित स्त्री का शोषण करने के लिए सुख प्रसाद जैसे वृद्ध व्यक्ति उनके जीवन को तहस–नहस कर देते हैं। सोमा और रेवती दोनों निडर एवं साहसी हैं, इसलिए तकलीफों का सामना करते हुए भी कमजोर या निराश नहीं होते और अपने गाँव लौटकर, फिर से अपने जीवन में खुशहाली लाने का सपना ऑखों में लिए शहर से गाँव की ओर पलायन करते हैं।

13. 'अंगूरी'– सूरजपाल चौहान

सूरजपाल चौहान की **'अंगूरी'** कहानी की नायिका अंगूरी का रुपवती होना उसके लिए अभिशाप बन जाता है। दलित स्त्री की सुन्दरता व यौवन गाँव के युवक को आकर्षित करता ही था, बड़े बूढ़े तक की नजरें उससे नहीं हटतीं थीं। अंगूरी का पति गेंदा सवर्णों की बेगारी करता था। वह दिनभर के परिश्रम के बदले में दो वक्त का भोजन मात्र ही जुटा पाता था। गरीब, लाचार, अशक्त गेंदा पत्नी के सम्मान के लिए सवर्णों से सामना करने में अपने आप को असमर्थ महसूस करता है। अंगूरी भी पति से शिकायत करके थक चूकी थी। उसका जीना हराम हो गया था। लोगों की छेड़छाड़, प्रणय निवेदन आदि हरकतों से तंग आ जाती है। गाँव के मुखिया और उसके काले पहलवान ने अंगूरी को दबोचने का षडयंत्र रचकर गेंदा को एक रात के लिए गाँव से दूर भेज दिया। मजबूरी में गेंदा इस षड़यंत्र से बेखबर तहसीलदार के हस्ताक्षर करवाने चला जाता है। अंगूरी को इस षढयंत्र की भनक लग जाती है।

अंगूरी पति की गैरमौजूदगी में भी अपनी आत्मरक्षा करने के लिए तैयार थी। वह भूखे भेड़ियों को सबक सीखाने के लिए चौकन्नी हो जाती है और जैसे ही मुखिया आधी रात को उसके घर में कूदकर अंगूरी के समक्ष प्रणय–निवेदन करने लगता है, वह सहजता से ही अंगूरी को प्राप्त कर लेगा, यह सोचकर वह यहाँ आया था, किन्तु अंगूरी आत्मरक्षा के लिए हँसिया उठा लेती है, और भूखी शेरनी बनकर उसके सीने पर खड़ी होकर उसे धमकाते हुए कहती है–

"चल, निकल यहाँ से। यदि जरा भी देरी लगाई, तो तेरी अँतड़ियाँ निकालकर बाहर धर दूँगी। पोंगा पण्डत.....मैं अहिल्या ना हूँ, मैं अंगूरी हूँ, अंगूरी।"[134]

यहाँ अंगूरी की निडरता, साहस, आत्मविश्वास उसे सबला नारी बना देता है। वह शोषण के विरुद्ध विद्रोह करके अपनी रक्षा करती है, साथ ही शोषक को ऐसा सबक सीखाती है, जिससे वह कभी किसी को अशक्त समझकर उसका शोषण न कर सके।

आज की दलित नारी अहिल्या नहीं है, जो निर्दोष होते हुए भी दंडित की जाए। आज अंगूरी जैसी महिलाएँ अपने पर अत्याचार करने वाले को स्वयं दंड देती हैं, किन्तु उसी समाज का उसका पति गेंदा पुरुष होते हुए भी परिस्थितिवश एवं गाँव के परंपरागत वातावरण एवं रीतिरिवाज, गरीबी, भुखमरी, बेगारी आदि के कारण अपने मुँह पर ताला लगा लेता है।

प्रस्तुत कहानी की शुरुआत गेंदा की लाचारी से होती है, किन्तु अंगूरी के विद्रोह से होता है। कहानी के संवाद छोटे एवं रोचक हैं साथ ही पात्रोचित हैं।

13. 'टिल्लू का पोता'– सूरजपाल चौहान

'टिल्लू का पोता' सूरजपाल चौहान द्वारा रचित कहानी है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने वर्तमान समय में आज भी गाँवों में अस्पृश्यता के कारण किस तरह दलितों का अपमान किया जाता है, उसका वर्णन किया है। हरीसिंह एक शिक्षित व्यक्ति है, जो दिल्ली में सरकारी नौकरी करता है। उसकी पत्नी कमला और दो बच्चे हैं। गाँव में किसी रिश्तेदारी में शादी होने से वे गाँव आते हैं। रास्ते में पत्नी एवं बच्चों को प्यास लगती है। हरीसिंह गाँव भेद–भाव, ऊँच–नीच के वातावरण को भूला नहीं था, इसलिए वे उन्हें थोड़ी देर इंतजार करने की सलाह देता है। कमला और बच्चे वहाँ चल रहे कुएँ और बाल्टी देखकर अपनी प्यास को रोक नहीं पाते। उन्हें अच्छे कपड़ों में देख सवर्ण किसान पहले पानी निकालकर पीने की अनुमति दे देता है। किन्तु जैसे ही उसे यह पता चलता है, कि यह टिल्लू का पोता है, उसका रुप बदल जाता है। वह उसके हाथ से बाल्टी छीनकर माँजने लगता है। कमला इस अस्पृश्यता के भाव को ताड़ नहीं पाती और प्यास से तड़पती वह जैसे ही पानी पीने के लिए आगे बढती है, वह किसान उससे कहता है–

"अरे भंगनिया, नेक पीछे कू हट के पानी पी, यह शहर ना है गाँव है गाँव है, मारे लठिया के कमर तोड़ दी जाएगी। सारे (साले) भंगिया–चमरा के सहर में जाकै नये–नये लत्ता (कपड़े) पहर के गाँव में आ जात हैं। कुछ पतो न चलतु कि जे भंगिया–चमार के हैं कि नाय (नहीं)।"[135]

सभी वर्ण के लोगों को गाँव में अच्छे कपड़े, अच्छे खाना–पान, रहन–सहन, स्वतंत्रता, मान–सम्मान मिलता था, सिवाय दलितों के। उन्हें सुखी रहने और सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अधिकार नहीं दिया गया था, क्योंकि सदियों से उन्हें दीन–हीन ही रहने पर विवश किया गया है। कमला को अपेक्षा से परे किसान का व्यवहार उसे आहत करता है। वह क्रोध से जल उठती है। उसकी आँखों से दहकते

अंगारे निकलने लगते हैं और उस भेद–भाव और छुआ–छूत के भाव से दिए गए पानी को ग्रहण नहीं करती और कहती है–

> **"चलो, ये पानी नहीं जहर है। अपने घर जाकर पिएँगे....नहीं चाहिए आपका मीठा पानी..... ।"**[136]

पति के इशारे से कमला किसान के कड़वे शब्दों का जवाब बड़े सभ्य रुप में देती है, किन्तु किसान के लिए एक दलित स्त्री द्वारा ऐसे शब्द सुनना नई बात थी गाँव में दलित स्त्रियाँ लाज काढे सवर्णों के अपमान को सहती आई थी, कभी अपने अपमान को बदला या विद्रोह किसी ने नहीं किया था। कमला कुँए के पानी का तिरस्कार करके सवर्ण किसान की बेइज्जती कर देती है। जो काम हरीसिंह नहीं कर पाता वह कमला करके दिखा देती है। शोषण करना यदि गलत है, तो शोषण सहना भी उतना ही गलत है। शोषण के समक्ष विद्रोह होगा तभी कुछ परिवर्तन हो सकता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्याय के समग्रावलोकन पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजता से पहुँच संकते हैं–

1. जहाँ दलित नारी सच्चे स्वरुप में शिक्षित हुई है, वहाँ ग्रामीण जीवन में उनके द्वारा परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया है। नगर की अपेक्षा अभी गाँवों में दलित शिक्षा का प्रायः अभाव सा दिखता है। उसमें भी उच्चतम् शिक्षा तो लगभग नहींवत् पाइ जाती है।
2. प्रायः देखा गया है कि दलित नारियों में परिश्रम, जुझारुपन, संघर्षशीलता और समाज के रुढिगत रीति–रिवाजों से टकराने का साहस आदि मिलता है।
3. ग्रमभित्तीय कहानियों में दरिद्रता और विपन्नता के कारण उन्हें गाँव के उच्चवर्गीय लोगों द्वारा जातीय शोषण का शिकार होना पड़ता है।
4. आलोच्य समयावधि में कुछ तो ऐसी कहानियाँ आती हैं, जिसमें पूर्णरुपेण ग्रामीण परिवेश उपलब्ध होता है। ऐसी कहानियों में 'अंगूरी', 'सनातनी', 'पहली रात का अंत', 'बात', 'मीरधार', 'अत्तू और अम्मा', 'उसका फैसला', 'लाठी', 'रम्पो का चेहरा', 'सांग', लोकतंत्र में बकरी', आदि को रख सकते हैं।
5. आलोच्य समय सीमा में कुछ ऐसी भी कहानियाँ हैं, जिनमें ग्रामीण एवं नगरीय जीवन का मिला–जुला स्वरुप दृष्टिगत होता है। ऐसी कहानियों में 'टिल्लू का पोता', 'बदबू', 'अंधड़', 'सुनीता', 'आधा सेर घी', 'सिलिया', 'जंगल में आग', 'आखेट', 'भूख', 'कैद', 'यूज एण्ड थ्रो', 'क्रान्ति', आदि को रख सकते हैं।
6. हिन्दी की दलित कहानियों में दलित नारी की संवेदना को विविध रुपों में विश्लेषित किया जा सकता है–
    1. दलित शिक्षित महिलाएँ
    2. दलित अशिक्षित महिलाएँ
    3. दलित कामकाजी महिलाएँ
    4. आर्थिक स्वतंत्रता की चाह
    5. परिवार में पति की भूमिका
    6. परिवार में पिता की भूमिका
    7. दलित नारी का शोषण के प्रति विद्रोह

7. अवस्था की दृष्टि से आलोच्य कहानियों में बालिकाएँ, किशोरियाँ, युवतियाँ, प्रौढ़ाएँ और वृद्धाएँ आदि दलित नारी के रुप मिलते हैं, परंतु अपेक्षाकृत बालिकाओं का चित्रण कम हुआ है। प्रायः दलित नारी की युवा अवस्था का चित्रण अधिक देखने को मिलता है। कुछ अपवादों को छोडकर वृद्धाओं के जीवन चित्रण का अभाव–सा प्रतीत होता है।
8. पुरानी पीढ़ी की स्त्रियों में प्रायः जातिगत भीरुता, रुढिचुस्तता, तथा नयी पीढ़ी की दलित स्त्रियों में रुढिमुक्तता के कुछ अभिलक्षण दृष्टिगत होते हैं।
9. दलित नारियों की तुलना में दलित पुरुषों में जातिगत हीनता की भावना अधिक देखने को मिलती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दलित नारी के विविध रुप एवं उनके जीवन में अनेक समस्याएँ हैं। दलित स्त्री शिक्षित हो या अशिक्षित उसे अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए अपने परिवार, सवर्ण समाज, रुढ़िचुस्त रीतिरिवाज़, सामाजिक मान्यताओं, आर्थिक समस्यओं, बेरोजगारी, सम्मानपूर्ण जीवन जीने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। दलित ग्रामीण परिवेश की स्त्रियों की स्थिति अधिक दयनीय कही जा सकती है, सवर्णों द्वारा उनका जातीय शोषण किया जाना उनके लिए एक गंभीर समस्या है। गरीबी, भुखमरी की स्थिति में वे अधिकांशतः सवर्णों पर आश्रित हैं, अपनी मूलभुत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे कठोर परिश्रम करके अपने परिवार की सहायक बनती है, सवर्ण उनकी विवशता एवं आवश्यकताओं को भली–भाँति जानते हैं, इसलिए वे उनका जातीय शोषण करते आए है। शहरी परिवेश में भी दलित स्त्रियों का जातीय शोषण किया जाता है। इसके साथ स्कूल, कॉलेज, ऑफिस में दलितों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार सवर्ण शिक्षित वर्ग द्वारा देखा जा सकता है। शहरों में दलितों का शोषण करने के लिए नये–नये तरिकों का इस्तेमाल किया जाता है। उन्हें हीन समझा जाता है, उन्हें वह सम्मान जनक स्थान नहीं दिया जाता जिसकी वे अपेक्षा रखते हैं। परिणाम स्वरुप आज शिक्षित दलित जातिगत हीन भावना से ग्रस्त हो रहे है और अपनी जाति छिपाने के लिए विवश हैं। शहर हो या गाँव अस्पृश्यता दलितों का पीछा कही नहीं छोड़ती, जन्म से लेकर मृत्यु तक दलित इस समस्या से मुक्ति पाने के लिए छटपटाते हैं। आज 21वीं सदी में हमारे देश में हर क्षेत्र में प्रगति हो रही है, विकास हो रहा है, नयी–नयी विचार धाराओं को स्वीकार किया जा रहा है, ऐसी स्थिति में दलितों को सम्मान जनक जीवन जीने के लिए समाज द्वारा योग्य वातावरण देने की आवश्यकता है। विशेष रुप से दलित नारी को शिक्षा, स्वतंत्रता, रोजगार मिलने पर वे अपना जीवन स्वाभिमान से जी सकें, ऐसा प्रयास किया जाना अत्यंत आवश्यक है।

संदर्भ सूची:–

1. 'बदबू' – नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ दलित कहानियाँ – स. मुद्राराक्षस पृ. सं. 129
2. वही पृ. सं. 130
3. वही पृ. सं. 131
4. वही पृ. सं. 132
5. वही पृ. सं. 133
6. 'सूरज' – बयान अंक– 21, अप्रैल 2008 – स. मोहनदास नैमिशराय पृ. सं. 76
7. वही पृ. सं. 77
8. वही पृ. सं. 77
9. वही पृ. सं. 78
10. 'एक दलित लड़की' – बयान– अंक 27 अक्तूंबी 2008 स. मोहनदास नैमिशराय पृ. स. 21
11. वही पृ. सं. 21
12. वही पृ. सं. 21
13. 'नई धार' – दलित साहित्य वार्षिकी 2007–08 – स. जयप्रकाश कर्दम पृ. सं. 169
14. वही पृ. सं. 175
15. वही पृ. सं 175
16. 'क्रान्ति' – दलित साहित्य वार्षिकी 2007–08 – स. जयप्रकाश कर्दम पृ. सं. 217
17. 'इस समय में' – दलित साहित्य वार्षिकी 2006 – स. जयप्रकाश कर्दम पृ. सं. 254
18. वही पृ. सं. 254
19. वही पृ. सं. 255
20. 'यूज एंड थ्रो' – दलित साहित्य वार्षिकी 2007–08–स. जयप्रकाश कर्दम पृ. सं. 204–205
21. वही पृ. सं. 207
22. 'और वह पढ़ गई' – चर्चित दलित कहानियाँ – स. डॉ.कुसुम वियोगी पृ. सं. 29
23. वही पृ. सं. 30
24. 'रिश्वत' – दलित साहित्य वार्षिकी 2007–08 – स. जयप्रकाश कर्दम पृ. सं. 159
25. वही पृ. सं. 161
26. 'सिलिया' – दलित कहानी संचयन – स. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 63
27. वही पृ. सं. 62
28. वही पृ. सं. 64–65
29. 'मैं मईया थी' – हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 अगस्त 2004 – सं. राजेन्द्र यादव पृ. सं. 183
30. 'हम कौन हैं ?'– हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 अगस्त 2004–सं. राजेन्द्र यादव

पृ. सं. 149

31. वही पृ. सं. 149

32. 'अब का समय' –हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 अगस्त 2004 सं. राजेन्द्र यादव पृ. सं. 123

33. वही पृ. सं. 122

34. वही पृ. सं. 125

35. वही पृ. सं. 126

36. 'सनातनी' – बयान अंक 23 जून 2008 – सं. मोहनदास नैमिशराय पृ. सं. 19

37. वही पृ. सं. 20

38. वही पृ. सं. 21

39. 'कर्फ्यू' – युद्धरत आम आदमी अप्रैल–जून 2007 पृ. सं. 29

40. 'खटिया की जाति' – युद्धरत आम आदमी जुलाई–सितंबर 2008 अंक 93 पृ.सं. 50

41. वही पृ. सं. 51

42. 'फुलवा' – दलित कहानी संचयन – सं. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 104

43. वही पृ. सं. 104

44. 'हरिजन' – दलित कहानी संचयन – सं. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 89

45. वही पृ. सं. 90

46. वही पृ.सं. 86

47. 'उपमहाद्वीप' – हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 सं. अगस्त 2004– सं. राजेन्द्र यादव पृ. सं 178

48. वही पृ. सं. 176

49. 'आधा सेर घी' –हमारा जवाब – सं. मोहनदास नैमिशराय पृ. सं. 76

50. 'कर्ज़' – हमारा जवाब – सं. मोहनदास नैमिशराय पृ.सं. 20

51. वही पृ. सं. 27

52. 'बात' – काल तथा अन्य कहानियाँ – सं. रत्नकुमार सांभरिया पृ. सं. 16–17

53. 'सुमंगली' – दलित कहानी संचयन – सं. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 117

54. वही पृ. सं. 120

55. 'अत्तू और अम्मा' – युद्धरत आम आदमी अक्टूबंर–दिसंबर 2002 पृ. सं. 5

56. वही पृ. सं. 5

57. वही पृ. सं. 6

58. वही पृ. सं. 6

59. 'मजूरी' – हमारा जवाब – सं. मोहनदास नैमिशराय पृ. सं. 140

60. वही पृ. सं. 140

61. 'जंगल की रानी' –हिन्दी के दलित कथाकारों की पहली कहानी–सं. सूरजपाल चौहान पृ. सं. 48

62. 'मंगली' – दलित महिला कथाकारों की चर्चित कहानियाँ सं. डॉ.कुसुम वियोगी पृ. सं. 33

63. वही पृ.सं. 33

64. 'उसका फैसला' –नयी सदी की पहचान :श्रेष्ठ दलित कहानियाँ–सं. मुद्रा राक्षस पृ.सं. 103

65. वही पृ. सं. 103
66. 'बंदरिया' – युद्धरत आम आदमी जुलाई–सितंबर 2008 अंक 93 पृ. सं. 42
67. वही पृ. सं. 45
68. वही पृ. सं. 46

69. 'सुनीता' – हिन्दी के दलित कथाकारों की पहली कहानी–सं. सूरजपाल चौहान पृ सं. 125
70. वही पृ. सं. 126
71. 'मेरा समाज' – टूटता वहम – सं. डॉ. सुशीला टाक भौरे पृ. सं. 30–31
72. 'अम्मा' – सलाम – सं. ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. सं. 115
73. वही पृ. सं. 116
74. 'चिड़ीमार' – हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 अगस्त 2004–सं. राजेन्द्र यादव पृ. सं. 114
75. 'मरीधार' – जातिदंश की कहानियाँ – सं. सुभाषचंद कुशवाह पृ. सं. 47
76. 'बीती रात अंधेरी' –जुड़ते दायित्व – सं. कुसुम मेघवाल पृ. सं. 12
77. वही पृ. सं. 14
78. 'दर्द' – दलित साहित्य 2003 – सं. मोहनदास नैमिशराय पृ. सं. 116
79. वही पृ. सं. 117
80. 'पहली रात का अंत' – जाति दंश की कहानियॉ – सुभाषचंद कुशवाह पृ. सं. 261
81. वही पृ. सं. 261
82. वही पृ. सं. 259
83. वही पृ. सं. 264
84. 'अपना गाँव' – दलित कहानी संचयन – सं. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 32–33
85. वही पृ. सं. 38
86. वही पृ. सं. 47
87. 'लाठ' – हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 अगस्त 2004 – राजेन्द्र यादव पृ. स. 128
88. वही पृ. सं. 131
89. वही पृ. सं. 131
90. 'लोकतंत्र में बकरी' – हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 – सं. राजेन्द्र यादव पृ. सं. 170
91. वही पृ. सं. 170
92. 'रात' – हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 अगस्त 2004 – सं. राजेन्द्र यादव पृ. सं. 185
93. वही पृ. सं. 165
94. 'सिमटा हुआ आदमी' – हमारा जवाब – सं. मोहनदास नैमिशराय पृ. सं. 131–132
95. वही पृ. सं. 131–132
96. वही पृ. सं. 131–132
97. 'टूटता वहम' – टूटता वहम – सं. सुशीला टाकभौरे पृ. सं. 80
98. 'डंक' – काल तथा अन्य कहानियाँ – सं. रत्नकुमार साभरिया पृ. सं. 118
99. 'भूख' – दलित कहानी संचयन – सं. डॉ.सी.बी.भारती पृ. सं. 121–1

100.'कफन' दलित साहित्य वार्षिकी 2007–08 सं. जयप्रकाश कर्दम पृ. सं 241
101. वही पृ. सं. 237
102. 'अंधड़'– सलाम – सं. ओप्रकाश वाल्मीकि पृ. सं. 86
103. वही पृ. सं. 92
104. 'घाटे का सौदा'–हैरी कब आएगा ? – सं. सूरजपाल चौहान पृ. सं. 36
105. 'आतंक' – नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ दलित कहानियाँ–सं. मुद्रा राक्षस पृ. सं. 101
106. 'अन्तिम बयान' –दलित कहानी संचयन – सं. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 136
107. वही पृ. सं. 141
108. 'जंगल में आग'–दलित कहानी संचयन – सं. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 127
109. 'अंगारा' – दलित कहानी संचयन – सं. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 143
110. वही पृ. सं. 143
111. वही पृ. सं. 144
112. 'साजिश' – दलित कहानी संचयन पृ. सं. 67
113. वही पृ. सं. 67
114. वही पृ. सं. 69
115. वही पृ. सं. 69
116. वही पृ. सं. 70
117. 'रम्पो का चेहरा' – हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 अगस्त 2004 पृ. सं. 185
118. वही पृ. सं. 186
119. वही पृ. सं. 186
120. वही पृ. सं. 186
121. वही पृ. सं. 186
122. 'बदला' – युद्धरत आम आदमी अक्टूबर–दिसम्बर 2006 पृ. सं. 32
123. वही पृ. सं. 33
124. वही पृ. सं. 34
125. वही पृ. सं. 35
126. 'जोजना' – युद्धरत आम आदमी अक्टूबर–दिसम्बर 2002 पृ. सं. 07
127. वही पृ. सं. 08
128. 'सुनरी' – युद्धरत आम आदमी जनवरी–मार्च 2008 अंक 90 पृ.सं. 27
129. वही पृ. सं. 27
130. वही पृ. सं. 27
131. वही पृ. सं. 27
132. 'सांग' – चर्चित दलित कहानियाँ – सं. डॉ.कुसुम वियोगी पृ. सं. 59–60
133. 'आखेट' – हुकम की दुग्गी – सं. रत्नकुमार सांभरिया पृ. सं. 35
134. अंगूरी' – हैरी कब आएगा ? – सं. सूरजपाल चौहान पृ. सं. 47
135. 'टिल्लू का पोता'– हैरी कब आएगा ? – सं. सूरजपाल चौहान पृ. सं. 26
136. वही पृ. सं. 26